I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

जुलाई-अगस्त 2025 * भाग 41 - अंक 4

एलिफेंटा गुफा (मुम्बई) के विश्व प्रसिद्ध त्रिमुख महेश

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी •

जुलाई-अगस्त 2025 भाग 41 अंक 4

भारत के अद्भुत शिल्प

एलिफेंटा की मुख्य गुफा के सामने डॉ. बाबूलाल शर्मा

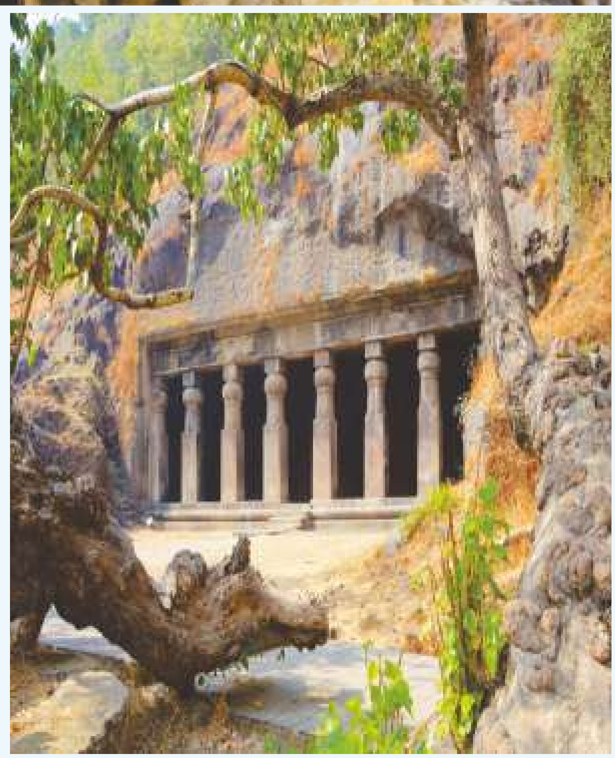

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

ISSN 0975-6531

वैचारिकी

भाग : 41 अंक : 4

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

जुलाई-अगस्त, 2025 ✷ आषाढ़ शुक्ल 6, भाद्रपद कृष्ण 13, वि. सं. 2082

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 5
- **मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण चरित**
  डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 9
- **सूर की भक्ति की प्रासंगिकता**
  रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' 15
- **आळवारों का तमिल साहित्य में योगदान**
  डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन 20
- **संत तुकाराम के अभंगों में सामाजिक मूल्य**
  घुंघरू परमार 24
- **मिथिला की संत परम्परा**
  डॉ. अहिल्या मिश्र 28
- **कुँवर नारायण कृत 'आत्मजयी': एक पुनर्मूल्यांकन**
  प्रो. अर्चना जैन 33
- **समकालीन हिंदी कहानी का समाज**
  प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय 41
- **अल्फा-बीटा-गामा : संवेदना का नवीन आख्यान**
  मिन्नु जोसेफ 48
- **कश्मीरी संत कवयित्री लल्लेश्वरी की दार्शनिक चेतना**
  डॉ. अमरसिंह वधान 55
- **डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा का 'जम्भेश्वरदर्शनम्'**
  डॉ. मंगलाराम 59
- **समर्पिता साहित्यानुरागी विदुषी महिमा मेहता**
  डॉ. विद्या केशव चिटको 65
- **चरकसंहिता में सांख्यदर्शन : एक अभ्यास**
  बलाभाई एस. रबारी 70
- **परिव्राजक सम्राट् महाराज हस्तिन : पुनर्समीक्षा**
  डॉ. ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव 75
- **सवाई जयसिंह का राज्य विस्तार**
  डॉ. आनन्द शर्मा 79
- **पुरावशेषों के दीवाने खोजक ओमप्रकाश 'कुक्की'**
  प्रो. (डॉ.) कहानी भानावत 84
- **पाठक-मंच** (कुछ रोचक मूर्तियां/मंदिर) 90
- **प्रतिस्वर** 93

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर

12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी

कोलकाता-700 087

दूरभाष : 033-71001614

मो. : 09830559364

ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com

Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

द्वैवार्षिक 1500/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. :
32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch : New Market
IFSC Code No. :
SBIN0004662

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

भारत अत्यंत प्राचीन सभ्यता है और भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन काल से ही प्राणी मात्र के सम्पूर्ण विश्व के कल्याण हेतु विचार करने वाली संस्कृति रही है। समकाल में सनातन संस्कृति की उपेक्षा अथवा नई पीढ़ी के मध्य सनातन संस्कृति का अज्ञान और अवहेलना पर विचार करते समय कुछ प्रश्न अनायास मस्तिष्क में आते हैं। सनातन संस्कृति के उपासकों ने इसके प्रसार और संरक्षण के क्या उपाय किये हैं? यहां-वहां होने वाले इकहरे और एकांतिक प्रयास नहीं, बल्कि समाज के दलित और वंचित वर्ग के मध्य किये गये सामूहिक और संगठनात्मक प्रयास। धर्मपीठों के हमारे आचार्य और प्रतिष्ठित मठाधीश धर्मांतरण पर चिंता व्यक्त करते तो देखे जाते हैं पर समाज के साधनहीन और उपेक्षित वर्ग के मध्य उनके सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों के बारे में मेरी जानकारी कम है। जब तक हमारे धर्मगुरु हाथी दांत की मीनारों से उतर कर और अपने मठों और मंदिरों से बाहर निकल कर बृहत्तर समाज के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के लिए काम नहीं करेंगे तब तक उनकी मौखिक चिंता का कोई असर हिंदू समाज पर नहीं पड़ेगा।

तुर्क और अन्य विदेशी आक्रांताओं ने तलवार के जोर पर धर्मांतरण का काम किया। मनबल और बाहुबल के साथ धनबल का भी सहारा लिया गया। यह बल आज भी सूक्ष्म रूप से काम कर रहा है। इसके पीछे राजनीतिक दुरभिसंधि भी शामिल है। नियोकॉलोनाइजेशन के तहत भारतीय समाज को अनेक स्तरों पर विभाजित करने और दबाने का काम चल रहा है। धर्मांतरण एक जटिल मुद्दा है। इसका सम्बंध भूख और गरीबी से तो है ही इसका सम्बंध जातिगत अन्याय और अनाचार से भी है। दलित, वंचित वर्ग के उत्थान के कितने उल्लेखनीय प्रयासों के बारे में हम जानते हैं? धर्मांतरण जैसे मुद्दों को संबोधित करने वाली जमीनी स्तर की कार्रवाई की कमी साधन सम्पन्न अभिजात वर्ग और साधनवंचित निम्नवर्ग के बीच के अंतर की ओर इशारा करती है। यह अंतर गरीब समुदायों को धर्मांतरण के प्रति संवेदनशील बनाता है। भक्ति आंदोलन जैसे महान सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन का कबीर और तुलसी जैसे संतों की वाणी का भारतीय समाज पर इतना कम असर कैसे हुआ? कुछ हिंदू नेताओं और संगठनों ने हाशिए पर पड़े समुदायों के बीच महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य किए हैं। केरल में श्री नारायण गुरु (1854-1928) जैसे लोगों ने हिंदू धर्म के ढांचे के भीतर एझावा जाति के उत्थान के लिए काम किया। उन्होंने उनके लिए मंदिर बनवाए और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को त्यागने की

वकालत की। पर ब्रह्म समाज या आर्य समाज या रामकृष्ण मिशन जैसे उन्नीसवीं सदी के सुधार आंदोलन भारतीय समाज में निष्प्रभावी कैसे होते चले गये?

जबकि तथाकथित निम्नजाति अथवा समुदायों के मध्य जाति आधारित आध्यात्मिक नेता एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरे। पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में तथाकथित निम्नजाति समुदायों से 'स्वयंभू धार्मिक नेताओं' का उदय सामाजिक कार्य के एक अन्य रूप को दर्शाता है। ये नेता बड़े धार्मिक संगठन या डेरे चलाते हैं और अपने अनुयायियों को, जिनमें बहुलांश दलित हैं, सामाजिक और आर्थिक अवसर प्रदान करते हैं। उनके अनुयायी आध्यात्मिक और आर्थिक रूप से उन पर निर्भर हो गये हैं, और वे हज़ारों लोगों को संगठित कर एक प्रभावी राजनीतिक शक्ति बन गये हैं। पर ये नये हिंदू गुरु भी धर्मांतरण के कारणों को प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं कर रहे हैं। इसलिए व्यापक व्यवस्थागत परिवर्तन का अभाव बना रहता है। यदि हिंदू धर्म ने अपने आंतरिक तनावों को सही ढंग से सम्बोधित किया होता तो शायद दलित नेता डॉ. बी.आर. अंबेडकर को अपने अनुयाइयों के साथ बौद्ध धर्म नहीं अपनाना पड़ता। अंबेडकर ने बौद्ध धर्म इसलिए अपना लिया था कि हिंदू धर्म का दर्शन जातिविहीन समाज का समर्थन नहीं करता।

जाति आधारित भेदभाव, गरीबी और सामाजिक सम्मान की कमी जैसे मूल मुद्दों को सुलझाने की बजाय हम धर्मांतरण की शिकायत करने में ज़्यादा ऊर्जा लगाते हैं। हिंदू समूहों ने आदिवासी समुदायों के बीच ईसाई मिशनरियों द्वारा किए गए सामाजिक और विकास कार्यों के साथ आये 'धर्मांतरण' का तो विरोध किया पर वे स्वयं इसके अनुरूप सेवाएँ प्रदान करने में विफल रहे हैं। हम न तो सामाजिक और आर्थिक उन्नयन के लिए कुछ कर सके और न ही वंचित वर्ग के उत्थान में कोई नैतिक या आध्यात्मिक योगदान दे सके।

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे साधु-संत और आचार्य तथा हमारा साधनसम्पन्न वर्ग समाज के विपन्न और साधनहीन वर्ग के मध्य जाकर जमीनी स्तर पर सामाजिक और आर्थिक विकास के रचनात्मक कार्य करें ताकि धर्म परिवर्तन के मूल कारणों का निराकरण हो सके। जिन्हें आप प्रेम और आत्मीयता और भरोसे के साथ उन्नयन के पथ पर ले जायेंगे वे आपको छोड़कर कभी नहीं जाएंगे।

भारतवर्ष अपनी विकासयात्रा में एक पड़ाव पर पहुंच रहा है। और हमें आगे बढ़ने से रोकने के लिए एक ओर हम पर आर्थिक दबाव बनाए जा रहे हैं और दूसरी ओर धर्म और जाति आधारित सोच को प्रश्रय देकर हमें विभाजित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। ऐसे में संगठित रहकर ही हम अपने राष्ट्र और अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकेंगे। हमारी शिक्षा पद्धित का भी शीघ्रातिशीघ्र नवीनीकरण आवश्यक है। तभी हम आत्मबोध, मार्गबोध, गंतव्यबोध और व्यवधानबोध के साथ अपने लक्ष्यों और उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे।

भारत के आर्थिक विकास ने सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न तरह की प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया है। हाल ही में अमेरिका के राष्ट्रपति ने भारतवर्ष के विरुद्ध टेढ़ा रुख अख्तियार किया है। चीन, पाकिस्तान, तुर्की, यहां तक कि बांग्लादेश भी प्रायः भारत के विरुद्ध दृष्टिकोण अपनाते देखे गये हैं। हमारे समाज को आंतरिक कलह में उलझाने के दुष्प्रयास भी लगातार किये जा रहे हैं। जहां हम तेजी से विकास की ओर बढ़ रहे हैं और भारतवर्ष का दुनिया में सुनाम और प्रभाव बढ़ता जा रहा है, ऐसी परिस्थिति में किसी भी तरह की आंतरिक कलह देश के विकास में बाधक हो सकती है। अतः हमको एक साथ आपसी सहयोग की भावना से आगे बढ़ना चाहिए। इसके लिए हम सबको प्रयासरत रहना है।

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

●

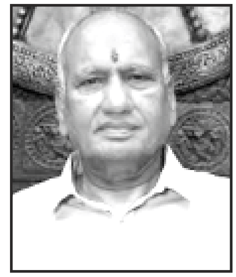

संपादकीय

15 अगस्त 2025, 79वें स्वतंत्रता दिवस और स्वतंत्रता दिवस की 78वीं वर्षगांठ की हार्दिक शुभकामनाएं।

द्वापर के महानायक भगवान श्रीकृष्ण के 5252वें जन्मदिन (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी वि.सं. 2082, 16 अगस्त 2025) की हार्दिक बधाई।

1947 में स्वतंत्रता मिली अर्थात अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिली, परन्तु देश-विभाजन की त्रासदी के साथ, जिन्ना के नेतृत्व में अड़ गए मुसलमान कि हिन्दुओं के साथ नहीं रहेंगे, हमें अलग देश चाहिए, नतीजा- हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बने, लगभग डेढ़ करोड़ लोगों के विस्थापन तथा लगभग पंद्रह लाख लोगों की लाशों पर। पाकिस्तान धार्मिक आधार पर अलग देश के साथ तत्काल मुस्लिम राष्ट्र बन गया, परंतु हिन्दुस्तान 'देश' मात्र बना रह गया, वह भी खंड-खंड, इसमें स्थित लगभग 575 देशों (रियासतों) को इसमें समाहित रखने में दो वर्ष का समय लग गया, फिर वह किया गया जिससे इसकी राष्ट्र बनने की संभावना क्षीण होती रहे, हिन्दुस्तान की जगह लिख दिया 'भारत दैट इज इंडिया'। इस देश को आक्रमणकारी भी हिन्दुस्तान ही कह रहे थे। दुनिया के लिए इस देश का नाम हिन्दुस्तान था और इसमें रहने वाले हिन्दू, अर्थात यहां की राष्ट्रीयता हिन्दू, परन्तु एक सोची-समझी चालाकी से इसका नाम भारत कर दिया गया।

देश कोई भू-भाग होता है, जिसे हम भौतिक रूप से सीमा आदि के रूप में समझा सकते हैं, जबकि 'राष्ट्र' उस देश के निवासियों की भावनात्मक एकता से बनता है, जिसमें सारी विभिन्नताएं समाहित होकर उस देश के समस्त वासियों के मन में वह भू-भाग मातृभूमि अर्थात अपनी मां के रूप में अनुभूत होता है और इससे उनको अपनी एक गरिमापूर्ण पहचान महसूस होती है। मुसलमान एवं इसाई भी हिन्दुस्तान के निवासी होने से हिन्दू ही हैं, परन्तु संकट यह है कि इस राष्ट्रीयता को धर्म के रूप में निरूपित कर दिया गया है। दुर्भाग्य कि सिक्ख, जैन, बौद्ध भी हिन्दू नहीं रहे, जो वस्तुतः खालिश हिन्दू ही हैं, इस तरह शेष बचे हिन्दू बहुसंख्यक कहे जाकर उपेक्षणीय होने को अभिशप्त हो गए अर्थात क्षेत्रीयता, भाषागत, जातियों, ऊंच-नीच, पंथों-संप्रदायों, गुरुडमों में बटा हुआ एक समूह है। यह मेंढकों की पोटली अपने कथित अतीत पर मुग्ध- गर्वित है, जबकि अतीत तो यह रहा कि-- आक्रमणकारी-आततायी आते रहे, इस पोटली में से ही उनको गद्दार मिलते रहे (जो अभी

भी मजे में हैं) और हम गुलाम होकर अपना नृशंस कत्लेआम, आस्थाओं का ध्वंस, बहन बेटियों के साथ बलात्कार देखते-सहते रहे... आक्रमणकारियों- आतताइयों को यह सब करने में सहयोग करते रहे, हम बचे हुए हैं-- हमारा स्वार्थ सिद्ध हो रहा है.. बस। उनके सिपहसालर, मनसबदार बन कर अपनों पर ही वीरता दिखाते रहे और वे कत्लोगारत, आस्थाओं का ध्वंस करते रहे? सर तन से जुदा, खाने-पीने की चीजों में थूककर बेचना, लड़कियों का अपहरण-हत्या, जिहाद की खुली घोषणायें, इस सबके बाद कहीं कुछ हलचल हुई। कुछ समझ आई? हम बुतपरस्त हैं और बुत खरोचों से सिहरते नहीं।

पहलगाम में पाकिस्तानी आतंकियों ने 26 लोगों को भून डाला। पहलगाम जैसी संवेदनशील स्थान पर सुरक्षा व्यवस्था क्यों नहीं थी और फिर सिन्दूर आपरेशन को अचानक बंद कर सीजफायर क्यों किया गया, जिसकी भी घोषणा श्रीमान ट्रम्प ने की। सरकार चुप है, वह केवल 'सिन्दूर' राग अलाप रही है तो विपक्ष 'आतंकियों का कोई धर्म नहीं होता है' का उपदेश करने में लगा है, मालेगांव की घटना में उनको भगवा रंग दीख गया, परन्तु दूसरी कितनी ही जगहों पर हुए आतंकी हमलों में हरा रंग नहीं दीख रहा... जो है सो है हम ऐसे ही हैं....? *एक ला-इलाज कौम।*

धारा 370 हटने के दसेक दिन बाद ही श्रीनगर जाना हुआ था। एयरपोर्ट में और बाहर सन्नाटा तो नहीं था, परन्तु ऐसा ही कुछ पसरा हुआ था। डल झील के किनारे के होटल और फिर हाउस बोट में अर्से बाद ग्राहक देखकर सूखे होठों पर मुस्कान-सी थी। हल्की चहल-पहल थी। शहर की सड़कों पर बीएसएफ की भारी गश्त के पहरे में शांति थी, लोग आतंकियों के खौफ में जिन्दगी तलाशने में लगे थे। छह लोगों के हिसाब से टैक्सी की। स्थानीय साइट दर्शन कराते, सरहदी गांधी के शानदार व्यक्तित्व के कुछ मध्यम-से संस्करण टैक्सी ड्राइवर अब्दुल डार (मेरे यह कहने पर कि 'डार'? तो उसने कहा था जी..जी हमारे पुरखे पंडित ही थे)। कश्मिरी पंडितों के जले आशियाने दिखाते हुए बीच-बीच में कहता भी जा रहा था-- साब, पंडित संगठित होकर भिड़ते तो कुछ होता, फिर गवर्नर नाकारा रहा।.... बात यह है कि ये आतंकी हम सबके बीच रहते हैं, पता ही नहीं चलता, खिलाफत करने वाले को कभी भी भूनकर चले जाएंगे...। पुलिस फौज की हालत यह है कि पत्थरबाजों के सामने हाथ बंधे खड़े रहने का आर्डर है... (एक तंज भरी मुस्कान के साथ)... यह क्या पुलिस फौज हुई... अब यह 370 हटी है तो कुछ सांस आई है...। शंकराचार्य पीक पर भी ऐसा ही कुछ सुनने को मिला....कि फौजी हैं बन्दूकों का बोझ ढो रहे हैं... चलाने की छूट दिला दीजिए... फिर देखिए... (आक थू)। पीक पर शिव मंदिर के बाहर तीन-चार मुस्लिम लड़के बैठे थे। मैंने आश्चर्य व्यक्त किया तो बोले-- क्यों नहीं सर आखिर तो ये हमारी जगह ही तो है, कश्मीर में ये जो नेता हैं मुस्लिम-मुस्लिम चिल्लाते रहते हैं, इनके खुद के बच्चे विदेशों में पढ़ते हैं, मजे करते हैं और यहां आतंकियों के द्वारा माने जाने के लिए हमलोग हैं।

सोनमर्ग और फिर गुलबर्ग के खच्चर वालों, दूकानदारों के पानी मरे चेहरों का सामना करते हुए घूमने के बाद उतरते हुए पता चला सड़क जाम है, मुहर्रम का जुलूस चल रहा है। 'अब बहुत वक्त लगेगा, ऊपर की तरफ सेवों के बगीचों में से निकल लें क्या?' अब्दुल ने जैसे मुझसे कहा, हालांकि वह बड़बड़ाया था। चिंतित मैंने गर्दन ऐसे हिलाई कि 'जैसा ठीक समझो'। वापस चढ़ाई के बाद गाड़ी, सेव के बगीचों के बीच में से दौड़ने लगी। चिंता रिलीज हुई और रौनक आई। साथ ही महिलाएं चहकपड़ी 'सेव..सेव.. पेड़ की सेव'। मेरे साथी ने मना किया, परंतु अब्दुल ने गाड़ी रोकी, महिलाओं की चहक का सम्मान करते हुए नीचे उतरकर नीचे गिरी दो तीन सेव महिलाओं को दी। तभी सामने से एक मारुति आई, उसमें से मुस्टंडे टाइप चार लोग उतरे एक बोला, 'कौन हैं ये गाड़ी में'। अब्दुल ने दबे-दबे हंसकर हाजिर जबाबी की, 'ये, ये तो हैदराबाद की मुस्लिम फैमिली हैं।' 'ओह तब ठीक है... जाओ। लम्बी

चुप्पी के बाद मैंने कहा, अब्दुल मियां आपने बड़ी हाजिर जवाबी की।' 'जी... दिमाग खराब है इन लोगों का'। होटल पहुंच कर मैंने अब्दुल से कहा, 'कल पहलगाम चलेंगे।' कुछ देर चुप रहकर अब्दुल मियां ने कहा- 'साब, आप कहते हैं तो चल पड़ेंगे, लेकिन मेरे ख्याल में पहलगाम जाना ठीक नहीं रहेगा...।'

... फिर 22 अप्रैल को हजारों पर्यटकों के पहलगाम जाने को क्यों, किसने ठीक समझ लिया। कैसे मान लिया गया कि जम्मू-कश्मीर में और उसमें भी पहलगाम जैसी आतंकियों के लिए सॉफ्ट साइट में आतंकवाद खत्म हो चुका है और अब वहां सुरक्षा बलों की जरूरत नहीं है... वे आए कपड़े उतरवाकर तक देखा, पक्का किया कि हिन्दू हैं और दागदी गोलियां, तड़फते लोग, और इसके बाद नृशंसतापूर्वक सेल्फियां लेकर जश्न मनाते वे चले गए। जिनका धर्म वही है जो दुनिया के तमाम आतंकियों का है, जबकि बड़ा नर्म-नर्म कथन आपने 'उच्चस्तरीय' लोगों से सुना ही होगा कि 'आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता'। दुनिया के विभिन्न मुस्लिम आतंकी समूहों के अपने अपने उद्देश्य हैं- परंतु पाकिस्तानी आतंकियों के निशाने पर एकमात्र हिन्दू हैं।

हिन्दू होना जैसे बड़ा जुर्म हो गया है। हिन्दू है तो बस कुफ्र हो गया/तड़-तड़ भून दिया/ हंसती-खेलती जिन्दगी का सफर थम गया/ बेटी बाप की लाश पर रोए/ मां का दिया बुझ गया/ सूखी भी नहीं मेंहदी हाथों की कि सिन्दूर लुट गया/ खौफजदा मंजर है कि बहन का भाई यूं ही खो गया/ यह कैसा धर्मो ईमान है जहां सिर्फ कत्ल औ गारत रह गया/ बेगुनाहों का कत्ल सबाब का काम/ कातिलों के लिए जन्नत में शराब की नहरों और हूरों का इंतजाम? जिन्दगी देना-लेना ऊपरवाले का काम, फिर उसमें यह दखल? इंसानों की दुनिया में इंसानियत से ऊपर हैवानियत हो गयी है। आंखों के अंधों के लिए इंसानियत से ऊपर धर्म बन गया है। कुछ करें यारो दर्द हद से पार कर गया है कि हिन्दू होना जैसे बड़ा जुर्म हो गया है?

सत्ता इस घटना को अपनी चूक का नतीजा मानकर 'सिन्दूर आपरेशन' में अपनी जीत बता रही है, जीत हुई है, हालांकि लग नहीं रही है। 1947 से एक नासूर रिस रहा है, पता नहीं कब तक रिसेगा। विपक्ष के अपने राजनीतिक लाभ और नजरिये से दावों-बयानों का जंजाल हैं। हिन्दू हैं कि इसके-उसके पीछे हैं।

क्रिकेट में जीत के लिए यज्ञ-अनुष्ठान होते हैं जगह जगह परंतु सिन्दूर आपरेशन के लिए? सिर तन से जुदा और पहलगाम जैसी घटनाओं को लेकर कितने हिन्दू सड़क पर आए? एक से एक बयान हैं इनके पास अपनी महानता के, सदियों की गुलामी और जिल्लत के बावजूद। गद्दारी की कहानियां अलग हैं। हां, यह सच है कि हिन्दू कोई धर्म नहीं, संस्कृति है मनुष्यता की, सबके अपने अपने तरीके से जीवन जीने की आजादी की, मगर इसके वजूद को खत्म करने पर तुले हैं जिहादी जिनमें से एक समूह की भाषा गोली-खंजर की है तो दूसरा समूह लोभ-लालच की भाषा से चुपचाप धर्मांतरण कराते हुए इसके वजूद को मिटाने में लगा है।

सरकार ने पहलगाम के आतंकी हमले का जवाब पाकिस्तान को आपरेशन सिन्दूर से दिया है, परंतु आस्तीनों के सांपों को कुचलने के लिए सरकारी प्रयासों की सीमा है, और वे तभी संभव हैं, जब सरकार के साथ लोगों का संगठित समूह हो। सच तो यह है कि इन आतंकी हमलों और जिहादियों को संगठित आक्रामक जवाब ही रोक सकता है, केवल पीड़ित होकर रिरियाते रहने से काम नहीं चलेगा। फिर इतिहास गवाह है कि आक्रमणकारियों की बजाय गद्दारों ने, क्षुद्र स्वार्थों के लिए विभाजित रहकर इसके अपनों ने, इस सनातन संस्कृति को ज्यादा लहूलुहान किया है, कर रहे हैं।

ऐलिफेंटा के त्रिमुख महेश (शिव)

वैचारिकी के इस अंक के आवरण पर ऐलिफेंटा गुफा के विश्व प्रसिद्ध त्रिमुखी शिव का चित्र है। मुम्बई, गेटवे ऑफ इंडिया से स्टीमर और फिर टॉयट्रेन से यात्रा कर, कई सीढ़ियां चढ़कर प्रसिद्ध शैव गुफा एलिफेंटा

पहुंचकर लगा जैसे शिवलोक में पहुंच गये। बौद्धों के अनुकरण पर शैवों ने भी पहाड़ी चट्टानों में गुफा-मंदिरों का निर्माण करवाया। समुद्र में स्थित इस एलिफेंटा द्वीप का प्राचीन नाम धारापुरी था। इस द्वीप का एलिफेंटा नाम यहाँ से प्राप्त एक शैलकृत विशाल हाथी (ऐलिफेंट) के कारण पड़ा, जो वर्तमान में 'वीरमाता जीजाबाई भोंसले उद्यान, मुम्बई' में स्थापित है।

धारापुरी अपनी शैलकृत गुफाओं के लिए प्रसिद्ध है। इस गुफा समूह में कुल सात गुफाएँ हैं जिनमें से पाँच गुफाएँ पश्चिमी पहाड़ी पर तथा दो पूर्वी पहाड़ी पर स्थित हैं। इन गुफाओं में गुफा संख्या 1 सबसे विशाल एवं शिव के अनेक रूपों से अलंकृत है, जो त्रिमूर्ति के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरमुखी, मुख्य गुफा छह स्तंभों की छह पंक्तियों में विभक्त एक बड़ा स्तम्भयुक्त सभाकक्ष, एक छोटा सर्वतोभद्र मंदिर है तथा दो पार्श्व में खुला आँगन हैं जिसके दोनों और मंदिर बने हैं।

मुख्य सभाकक्ष में निर्मित सर्वतोभद्र वर्गाकार शिव मंदिर है जिसके चारों द्वारों पर एक-एक द्वारपाल बने हैं। सभाकक्ष के चारों कोनों पर नौ प्रतिमा फलक हैं जिनमें योगीश्वर शिव, रावणानुग्रह, शिव-पार्वती, अर्धनारीश्वर, महेशमूर्ति, गंगाधर, कल्याण-सुंदर (शिव-पार्वती विवाह), अंधकासुरवध और नटराज शिव के रूप दर्शाये गये हैं। मंडप की दीवार पर विशाल एवं रमणीय देव आकृतियां तथा द्वारपाल हैं। साथ ही कुछ अन्य स्थापत्य लक्षण उत्कीर्ण हैं, जिनमें तकियानुमा आकार लिए शीर्ष (पद्म) वाले चौकोर स्तम्भ चालुक्य प्रभाव को दर्शाते हैं, वहीं दूसरी ओर पर्वतों तथा मेघों का अंकन एवं स्त्रियों की केश-सज्जा गुप्तकला शैली से प्रभावित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गुफा की छत कभी विभिन्न रंगों से चित्रित थी, परन्तु अब वह चित्रण नष्ट हो चुका है। विश्व प्रसिद्ध महेश मूर्ति मुख्य गुफा की दक्षिणी दीवार के मध्य में उत्कीर्णित है जिसमें, मुम्बई पुरातत्व विभाग के अनुसार शिव के तीन स्वरूपों- सृष्टिकर्ता, सृष्टि-संरक्षक एवं सृष्टि-संहारक को दिखाया गया है जो गुप्त-चालुक्य कला की अनुपम कृति है। परंतु यह पंचमुख शिव की मूर्ति है। इसमें सद्योजात, अघोर आदि नामक मुख है जिसका सामने का मुख और उसके पार्श्व में दो मुखों के पार्श्व दिखाई दे रहे हैं, चतुर्थ मुख दृष्टिगत नहीं है और पाचवां मुख भी दृष्टिगत नहीं है जो मूर्ति का शीर्ष भाग है जिसे ईशान मुख कहा जाता है। इसमें दृष्टिगत तीन मुखों को सृष्टिकर्ता, सृष्टि-संरक्षक एवं सृष्टि-संहारक बताना उचित नहीं है। इस महेश मूर्ति का उत्कीर्णन पूरी तरह भगवान बुद्ध की मूर्तियों के अनुकरण में किया गया है। बीच का मुख तो स्पष्ट ही भगवान बुद्ध का मुख प्रतीत होता है।

पूर्वी आँगन के मध्य में स्थित वृत्ताकार अधिष्ठान शिव के वाहन नंदी (वृषभ) की स्थापना हेतु बनाया गया है। इस आँगन के दक्षिणी भाग में प्रदक्षिणापथ-युक्त एक छोटा सांधार-मन्दिर है, जिसके दोनों पार्श्वों में द्वारपाल एवं पश्चिमी भाग में एक सुन्दर तथा महत्वपूर्ण अष्टमातृका मूर्तिफलक उत्कीर्ण है जो अब खण्डित अवस्था में है। इस फलक के दोनों पार्श्वों में कार्तिकेय एवं गणेश हैं। मुख्य गुफा के पश्चिमी आँगन में एक अन्य लघु-देवालय एवं पानी का कुण्ड स्थित है जहाँ शिव का अंकन है। ये गुफाएँ छठी शताब्दी की हैं।

ऐलिफेंटा की अन्य शैलकृत गुफाएँ पूर्वी पहाड़ी पर स्थित हैं जो सामान्य एवं कम अलंकृत हैं। ऐलिफेंटा की गुफाओं में गुफा सं. 2 एवं 5 अपूर्ण हैं। इस गुफा समूह से प्राप्त अन्य पुरावशेषों में द्वितीय शताब्दी ई.पू. का एक विशाल स्तूप, चौथी शती ई. के क्षत्रपकालीन सिक्के हैं। साथ ही कुछ मूर्तियां हैं जिनमें महिषासुर मर्दिनी, चतुर्मुखी प्रतिमा, ब्रह्मा एवं विष्णु आदि की मूर्तियाँ प्रमुख हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा इन गुफाओं को राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों तथा यूनेस्को द्वारा विश्वदाय स्मारकों की सूची में शामिल किया गया है।

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

●

मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण चरित

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

अठारह महापुराणों में मत्स्यपुराण (लगभग 9वीं शताब्दी ई. में सम्पादित) की महत्ता उसके विश्वकोशीय स्वरूप के लिए विख्यात् है। यह पुराणों के क्रमशः सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित जैसे पाँचों लक्षणों - 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्' को पूरा करता है। ऐसे में यह लक्षणात्मक कोटि का पुराण है। इसकी सामग्री पूर्ववर्ती वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण से प्रेरित ज्ञात होती है, ऐसे में यह उक्त दोनों पुराणों का आश्रयवर्ती ग्रन्थ है। अपने नामानुसार यह विष्णु के मत्स्यावतार के नामाभिधान और वेदोद्धारक कथा-प्रसंग, दानादि को प्रतिष्ठित करता है। साथ ही इसमें आई पितृगाथा में पितरों द्वारा वंशजों से की गई अपेक्षा के अन्तर्गत विष्णु की शरण के भाव लक्षित हैं - अपिस्यात् स कुलेस्माकं सर्वभावेन यो हरिम्, प्रयायाच्छरणं विष्णु देवेशं मधुसूदनम्। लक्ष्मी की कामना रखने वाले को विष्णु कलश के जल से स्नान करवाने का निर्देश है। इसमें आए वास्तुविधान श्रीहरिप्रोक्त कहे गए हैं - आयाधिके भवेच्छान्तिहारित्याह भगवान् हरिः। (मत्स्य : 204, 16 व 206, 35 तथा 257, 21)।

उक्त वैष्णव उल्लेखों के बावजूद इसमें शैवमतानुमत सामग्री का प्राचुर्य होने से यह शैव पुराणों की कोटि में गिना जाता है। इसमें उच्छिष्ठ, रस-रसायन, खड्ग, अंजन, पादुका और विवरसिद्धि जैसे शिव आराधकों के प्राथमिक चिह्न बताए गए हैं और यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा और योगादि से शिवाराधना का अंशमात्र कहा गया है (उपर्युक्त 193, 38-39)। शिव के 'करुणाभ्यदय स्तोत्र' से चिरस्थायी लक्ष्मी की कामना की गई है। 'तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश' श्लोकानुसार (53, 50) इसका मूल नाम मात्स्य पुराण था। आरम्भ में भी इसको मात्स्य पुराण ही कहा है जिसका कथन भगवान गदाधर ने किया था - मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः (1, 11)। इस पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति और उसका संहार, वंश मन्वन्तर, लोगों के वंशों के चरित, भुवन का विस्तार, दान एवं धर्म की विधि, सनातन श्राद्धकल्प, वर्ण और आश्रम के विभाग, इष्टापूर्त संज्ञक कर्म, देवाताओं की प्रतिष्ठा एवं तत्सम्बद्ध अन्य उपयोगी विषय ही थे। बाद में इसका पुनर्सम्पादन हुआ और शैव प्रभाव के फलस्वरूप वामन, पद्म, कूर्मादि की तरह इसमें शैवमत की सामग्री का संकलन होने से यह नाम मात्र से ही वैष्णव ज्ञात होता है। इसमें अमरकण्टक, दाशपुर

(मन्दसौर), मालव-मालवा, विदिशा और नर्मदा तथा उसके प्रवाहमार्ग के तीर्थों का पर्याप्त वर्णन होने से इसका सम्पादन नर्मदा क्षेत्र में हुआ अनुमान किया जाता है। हालांकि प्रयाग, भृगुतीर्थ, वाराणसी जैसे तीर्थों का माहात्म्य भी पर्याप्त रूप में है। पुराणकार ने चाणक्य को ब्रह्मर्षि कहा है जिसने नर्मदा के शुक्लतीर्थ में सिद्धि प्राप्त की। वहीं पर विष्णु और शंकर की प्रसन्नता के लिए दान का अक्षय प्रभाव कहा गया है। (उपर्युक्त 192, 14)।

मत्स्यपुराण का प्रकाशन एवं अध्ययन

पिछली सदी में इसका अनुवाद एक तालुकेदार ने किया। मुम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास, कोलकाता के मनसुखराय मोर आदि ने इसके मूलपाठ का प्रकाशन किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से इसका सानुवाद प्रकाशन हुआ। बाद में, गीताप्रेस, गोरखपुर की कल्याण मासिक पत्रिका के विशेषांक के रूप में इसका दो वर्षों तक अनुवाद सहित प्रकाशन हुआ जिसका सम्पादन मोतीलाल जालान ने किया था। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल और प्रो. सुरेश जी काँटेवाला जैसे विद्वानों ने इसके साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व को स्वतन्त्र शोध ग्रन्थों के रूप में उजागर किया। प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने पुराणों के स्वरूप पर अपने अध्ययन तथा पाश्चात्य विद्वान एफ.ई. पार्जिटर ने भारतीय राजाओं की वंशावलियों के संबंध में इसकी सामग्री का परीक्षण किया तथा इसको पर्याप्त प्रामाणिकता प्रदान की। मूर्तिकला और स्थापत्य कला पर कार्य करने वाले प्रो. गोपीनाथ राय, जितेन्द्रनाथ बैनर्जी, स्टैला क्रेमरिश, डॉ. अनुभूति चौहान जैसे विद्वानों ने इसके एतद्विषयक अध्यायों की सामग्री का पर्याप्त उपयोग किया है। इसके वास्तु विषयक अध्यायों पर डॉ. प्रभा शर्मा ने अपना शोध प्रबन्ध तैयार किया है।

इस पुराण से, पन्द्रहवीं सदी में सूत्रधार मण्डन ने राजवल्लभ वास्तुशास्त्र में द्वार विषयक प्रमाणों को दिया है। मत्स्यपुराण में आए षोडश महादानों को यदि धर्माधिकारी हेमाद्रि ने 1260 ई. में उद्धृत किया है तो कृत्यकल्पतरुकार लक्ष्मीधर ने भी इसके अनेक श्लोकों को अपने ग्रन्थ के खण्डों में उद्धृत किया है। बल्लासेन ने दानसागर, नीलकण्ठ ने दानमयूख और मित्र मिश्र ने वीरमित्रोदय के लक्षण प्रकाश आदि में भी मत्स्यपुराण की सामग्री का उपयोग किया है। इसके जलाशयोत्सर्ग विधान को मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के विषय में लिखित 17वीं सदी के राजप्रशस्ति अभिलेख में राजसम्न्द झील के वर्णन के साथ उत्कीर्ण करवाया गया है। इसके वृषोत्सर्ग, वृक्षोत्सव आदि अध्यायों को स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता रहा है। इसमें गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों के प्रवाह क्षेत्र के तीर्थों का पर्याप्त वर्णन होने से तीर्थादि विषयक निबन्ध ग्रन्थों में भी इसकी सामग्री का उपयोग, स्कन्दपुराण की तरह उपयोगी बताया गया है।

मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण के प्रसंग

मत्स्यपुराण में भगवान् श्रीकृष्ण का चरित प्रथमतः 45वें अध्याय में स्यमन्तक मणिरत्न की कथा में आया है लेकिन इससे पूर्व चतुर्थ अध्याय में वैवस्वत मन्वतर के प्रसंग में कहा गया है कि श्रीराम ने पितामह ब्रह्मा के बल से बलराम और कामदेव ने उनके भ्राता श्रीकृष्ण के रूप में जन्म ग्रहण किया। (4.17-19)। आगे 45वें अध्याय में स्यमन्तक मणिरत्न की कथा में श्रीकृष्ण चरित है। यह रत्न वीर प्रसेन के पास था और वह भूमितल पर समस्त रत्नों का राजा था। श्रीकृष्ण ने उसको प्राप्त करने की इच्छा की और समर्थ होने पर भी उसका अपहरण नहीं किया- स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः।। हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लभे शक्तोऽपि न जहार सः।। (मत्स्य. 45, 4-5)। श्रीकृष्ण ने उसको ऋक्षराज जाम्बवान् से प्राप्त किया। यह कथा कुछ भेद से कल्कि, विष्णु और भागवत पुराण में भी आई है। इस प्रसंग में सात्त्वतों की सभा का

उल्लेख हुआ है जो सात्त्वत मत का एक पुरातन सन्दर्भ है। यह कथा श्रीकृष्ण पर लगे मिथ्या-अपवाद के हटाने के प्रयास की आनुषांगिक रूपरेखा है - इमां मिथ्याभिशास्तिं ये वेद कृष्णादपोहिताम्। न स मिवृयाभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित्।। (उपर्युक्त 45, 34)। इससे ज्ञात होता है कि पुराणकाल तक इस कथा-कथन का उद्देश्य मिथ्या-अभिशाप से मुक्ति प्राप्ति रहा होगा।

इसके बाद के अध्याय में वृष्णिवंश के वर्णन में श्रीकृष्ण का चरित आता है। वृष्णिवंशी ऐक्ष्वाकी के पुत्र शूर या शुरसेन (ईदुष या देवमीढुष) के दस पुत्रों में ज्येष्ठ वसुदेव थे जिनकी प्रसिद्धि आनकदुन्दुभि के नाम से हुई- वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः। (उपर्युक्त 46, 2)। वसुदेव की पत्नी रोहिणी से बलराम हुए। देवकी के गर्भ से सुषेण, कीर्तिमान, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र हुए जिनको कंस ने मार डाला। उसी से आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संभूवह। लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः।। (उपर्युक्त 46, 14)। पुराणकार ने वसुदेव की चौबीस पत्नियों से होने वाली अनेक सन्तानों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। इसी वर्णन में पुराणकार ने श्रीकृष्ण को करूष पर कृपा करने वाला बताया है जो सन्तानहीन था और श्रीकृष्ण ने उसको सुचन्द्र नामक पुत्र दिया जो बहुत भाग्यशाली, पराक्रमी एवं महाबली हुआ। इस अध्याय में श्रीकृष्ण का अत्यल्प वर्णन है लेकिन उनकी कृपा को महती बताया गया है। इसी कारण पुराणकार का मत है कि जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म एवं अभ्युदय का नित्य पाठ अथवा श्रवण करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है - कृष्णस्यरूप जन्मभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः। श्रृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (उपर्युक्त 46, 29)।

श्रीकृष्णावतार के हेतु

मत्स्यपुराण सिद्ध करता है कि पूर्वकाल में जो प्रजाओं के स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला विहार करने के लिए मृत्युलोक में मानवयोनि में अवतरित हुए - अथ देवो महादेवः पूर्व कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थ स देवेशो मानुषेष्विह जायते।। (उपर्युक्त 47, 1)। तेईसवें रथन्तर कल्प के बाद, वाराहकल्प के 7वें वैवस्वत नामक मंगलमय मन्वन्तर के प्राप्त होने पर 28वें द्वापर युग के अन्त में विष्णु वासुदेव रूप से पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अपने को महर्षि कृष्ण द्वैपायन, रोहिणीनन्दन बलराम एवं केशव रूप से तीन भाग में विभाजित कर अवतीर्ण हुए, ऐसी ईश्वर की भविष्यवाणी थी। वे कष्टहारी केशव कंस आदि राक्षसों के मद को चूर्ण करने वाले हुए। उनके लिए विश्वकर्मा ने द्वारवती (द्वारका) नामक पुरी का निर्माण किया जो दिव्यभावों से युक्त थी और जो पुराणकाल में कुशस्थली के नाम से प्रसिद्ध थी। द्वारका की सभा में श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों, वृष्णिवंशी पुरुषों, पर्याप्त दान देने वाले राजाओं, कौरवों एवं देवगन्धर्वों से घिरे हुए रहते थे। वहाँ धर्म की वृद्धि करने वाली पौराणिक कथाएँ होती थीं। (उपर्युक्त 69, 5-11)।

कहा गया है कि वे वसुदेव की तपस्या से देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और उनके नेत्र कमल के समान बहुत रमणीय थे। उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दैदीप्यमान कान्ति से प्रज्वलित था और वक्षस्थल श्रीवत्स के चिह्न से विभूषित था। वसुदेव ने इन दिव्य लक्षणों से सम्पन्न श्रीकृष्ण को देखकर कहा- प्रभो! आप अपने इस रूप को समेट लीजिए। देव! मैं कंस से भयभीत हूँ क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी छः पुत्रों को मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे। वसुदेव की यह बात सुनकर अच्युत भगवान् ने शूरनन्दन वसुदेव को उस समय करणीय कर्तव्य बताकर उस स्वरूप का संवरण कर लिया। इस पर वसुदेव ने उनको नन्दगोप के हाथो में सर्मर्पित किया और बोले- सखे! इस शिशु की रक्षा करो, इससे यदुवंशियों का सब प्रकार से कल्याण

होगा। देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ यह बालक आगे चलकर कंस का वध करेगा। (उपर्युक्त 47, 2-6)।

उक्त वर्णन बहुत सामान्य है लेकिन इसमें वसुदेव को वह भविष्यवाणी करते हुए वर्णित किया गया है कि यह देवकी के गर्भ से हुआ है और कंस का हनन करेगा। -- अयं तु गर्भो देवक्यां जातः हनिष्यति। पुराणकार ने इस साधारण प्रसंग में निहित असाधारणता को ऋषियों के प्रश्न से प्रकट की है और रहस्य को विवेचित किया है--वसुदेव कौन थे जिन्हें भगवान् तात-तात पुकारते थे? यशस्विनी देवकी कौन थी जिन्होंने भगवान् को जन्म दिया? नन्दगोप और महाव्रता यशोदा कौन थीं जिन्होंने भगवान् का अभिवर्धन किया?

क एव वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी।
नन्दगोपश्च कस्त्वेष च महाव्रता।।
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत।
या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत्।।
(उपर्युक्त 47, 7-8)।

पुराण वाचक

सूत ने इस प्रसंग में जो स्पष्टीकरण दिया, वह भारतीय वंशों के प्रवर्तक और प्रेरक विचार का पोषक है - पुरुष रूप में वसुदेव को कश्यप और प्रकृति रूप में देवकी को अदिति बताया गया जो दोनों क्रमशः ब्रह्मा और पृथ्वी के अंश हैं। यह मान्यता उस लोकदर्शन के निकट है जिसमें भूमि भी भावरूप में अपनी मनोकामनाएँ रखती है और अचला होकर भी चलायमान रहती है। पुराणकार ने कहा है कि देवकी ने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वर से जो अपेक्षाएं की थीं, उन सभी को महाबाहु श्रीकृष्ण ने पूरा कर दिया- अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्। ये तया कांक्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः।। परमसत्ता की दिव्यता को परिभाषित करते हुए पुराणकार ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया, उनका भाव है - 1. कामनाएँ पूर्ण करने वाले परमेश्वर योगात्मा हैं, 2. वे योगमाया का आश्रय लेते हैं, 3. समस्त प्राणियों को मोहित करते हैं और 4. मानव शरीर धारण करके भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

यह वही सिद्धान्त है जो श्रीमद्भगद्गीता में प्रकृतिवश पुनः-पुनः परिणत होने वाला कहा गया है- प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः-पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। (गीता 9, 8 आदि)। गीता के अवतारवाद के सिद्धान्त को भी यहाँ दोहराया गया है कि जब श्रीकृष्ण का अवतार हुआ, तब धर्म का ह्रास हो चुका था। धर्म की स्थापना और असुरों के विनाश के लिए उन सामर्थ्यशाली विष्णु ने वृष्णिकुल में जन्म धारण किया- *नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।।* (मत्स्य, 47, 12)।

यहाँ वही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है जो गीता के 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' (गीता 4, 8) के रूप में बहुश्रुत है। पुराणकार ने दोहराया है कि मानवों के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाले असुरों के संहार के लिए भगवान् यदुकुल में अवतीर्ण हुए- *इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्। तेषामुत्साद-नार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले।। कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्। सर्वमेतत् कुलं यावद् वर्तते वैष्णवे कुले।। विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः। निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ।।* (मत्स्य, 47, 27-29)।

यह वर्णन परवर्ती अनेक पुराणों और महाकाव्यों की रचना का आधार बना है। पुराणकार ने श्रीकृष्ण के विशाल कुल का वर्णन भी संक्षेप में किया है और कहा है कि रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित् की कन्या सत्या, सुभामा, शैव्या, गान्धार की राजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, मद्र की राजकुमारी कौसल्या तथा विजया आदि 16 हजार देवियाँ श्रीकृष्ण की रानियाँ थीं- एवमादीनि देवीनां सहस्राणि चो षोडश। (उपर्युक्त 47, 14)। पुराणकार ने प्रत्येक से उत्पन्न सन्तानों के नाम

भी दिए हैं और यादवकुल के विस्तार को महत्व दिया है-- अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा। लक्ष्मेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः।। (उपर्युक्त 47, 21)।

पुराणकार यह महत्वपूर्ण संकेत करता है कि वैष्णवमत का इतना प्रभाव रहा कि सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालंकि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा अन्य देव समाज, जिसको विप्र समुदाय के रूप में पहचाना जाता है, विष्णु के साथ संघबद्ध हुए। यह धार्मिक से एकता अनेक अवतार-कारणों के समय देखने को मिलती है। भारत का यह सहिष्णुता नामक मूल्य है जिसमें जब कभी कोई नए पथ का प्रणेता होता है और प्रभुत्व सम्पन्न होता है, तो लोक उसका अनुकरण करने को तत्पर होता है। गीता में यह मत 'स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते' (गीता 3, 21)। जैसे शब्दों से अभिव्यंजित है। पुराणकार 'ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते' (मत्स्य. 47, 32) पंक्ति में उन शासकों की सत्ता का संकेत भी करता है जो ब्रह्मक्षत्र थे अर्थात् ऐसे विप्र जिनमें क्षत्रियोचित पराक्रम और प्रभुत्व था। उनकी विफलता के बाद ईश्वरीय शक्ति के अवतरण से पुनः नियमों की परिपालना का मत दिया है। इस पुराण के रचनाकाल तक ऐसी शासकीय गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसमें वैष्णवीय मत को उजागर किया गया है। इसमें अवतारवाद के ध्येय के मूल में धार्मिक नेतृत्व का बड़ा कारण निहित लगता है- यदुवंशप्रसंगेन समासाद् वैष्णवं यशः। इसी प्रसंग में शैव मत अनुलग्नक भी है जिसका आधार वाजसनेयि संहिता, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण हैं।

कर्मयोग की महत्ता

मत्स्यपुराण में कर्मयोग को सार-संक्षेप में दिया गया है और जिसे ज्ञानयोग से हजारगुना श्रेष्ठ कहा गया है - कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णु विभाषितम्। ज्ञानयोगसस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते।। (उपर्युक्त 52, 5)। ज्ञान कर्मयोग से ही उत्पन्न होता है अतः यह परमपद ह। ब्रह्म भी कर्मज्ञान से होता है, कर्म के बिना ज्ञान की सत्ता नहीं है, इसीलिए कर्मज्ञान के अभ्यास में जुटा व्यक्ति अविनाशी तत्त्व को पा लेता है। इसमें यह भी कहा गया है कि प्रलयकाल में एकार्णव जल में मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णु ने सूर्यपुत्र मनु को सर्ग के विस्तार के वर्णन के साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोग के विषय में यथार्थरूप से बतलाया था। यह सन्दर्भ गीता के चतुर्थ अध्याय में भी आया है जिसमें कहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा था- *इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।* विववस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ब्रवीत्।। (गीता 4,1)। श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है कि इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गई हैं, उनमें सांख्य योगियों की निष्ठा ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से कही गई है। (गीता 3, 3)।

कर्मयोग की श्रेष्ठता के विषय में पुराणकार का मत है कि कर्मयोग ही ज्ञानयोग का साधक है, जगत में कर्मयोग के बिना किसी को ज्ञान की प्राप्ति हुई हो, ऐसा उदाहरण नहीं है। इसलिए श्रुतियों और स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित धर्म का सप्रयास पालन करना चाहिए और नियमित रूप से देवताओं, पितरों और मनुष्यों को यज्ञों द्वारा तृप्त करना चाहिए। (मत्स्य. 52, 12-13)। इस क्रम में गीता सहित मनुस्मृति (3, 68-71)। गौतमधर्मसूत्र के मत भी उद्धृत किए गए हैं।

वासुदेव की विभूतियाँ और अन्य सन्दर्भ

वासुदेव को तत्वतः इन्द्रियों के लिए अगोचर, परम शान्त, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, अव्यक्त, अविनाशी और विश्वस्वरूप बताया गया है। उनकी विभूतियों के नाम है - ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव, आठ वसु, ग्यारह गणाधिप, लोकपाल अधीश्वर, पितर और मातृकाएँ। इसमें चराचर जगत् भी आ जाता है

(उपर्युक्त 52, 21-26)। गीता के विभूतियोगाध्याय में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है, वह मत्स्यपुराण में मार्कण्डेय मुनि के प्रति श्रीहरि द्वारा कहा गया है (उपर्युक्त 167, 50-67)। इस पुराण में षष्टिव्रतों में कृष्णव्रत का उल्लेख है जो एकादशी तिथि को रात में एक बार भोजन करने के विधान वाला है और जिसमें एक वर्ष तक व्रत का पालन कर अन्त में सोने का विष्णुचक्र बनाकर दान करने का निर्देश है। इसका कर्ता विष्णुलोक का प्राप्त होता है और एक कल्प बीतने पर व्रतकर्ता भूतल पर राज्य का अधिकारी होता है। (उपर्युक्त 101, 58)।

पुराणकार ने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए कहा है कि जो व्यक्ति नेत्र, मन, वचन एवं कर्म से श्रीकृष्ण को प्रसन्न करता है, तो श्रीकृष्ण भी उसे उसी प्रकार आनन्दित करते हैं। राजा को राज्य की, निर्धन को उत्तम धन की, क्षीण आयु को दीर्घायु तथा पुत्रार्थी को पुत्र की प्राप्ति होती है। विष्णुभक्त मनुष्य यज्ञ, वेद, कामनापूर्ति, अनेकविध तप, विविध पुण्य और धन को प्राप्त करता है --

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति।।
राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामः सुतं तथा।।
यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च।
प्राप्तोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च।।
(उपर्युक्त 171, 67-69)।

पुराणकार ने मनुष्यों में कृष्णत्व का वर्णन किया है। विष्णु के विष्णुत्व एवं हरित्व की तरह यह कृतयुग में घटित बताया गया है और कहा है कि उस ईश्वर के कर्मों की गति बहुत गहन है- उसके अतीत में हुए और भविष्य में होने वाले अवतारों का यथार्थ वर्णन अनुपम है क्योंकि वे ऐश्वर्यशाली अव्यक्त स्वरूप होकर भी व्यक्तरूप में प्रकट होते हैं। नारायण अनन्तात्मा, सबके उत्पत्तिस्थान एवं अविनाशी भी हैं। श्रीहरि सनातन हैं और ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र तथा बृहस्पति के रूप में भी प्रकट होते हैं। (उपर्युक्त 172, 1-4)। श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ पधारने की घटना भी पुराण में आई है। इसमें कहा गया है कि मौसलयुद्ध में यदुवंशियों का विनाश होने पर वासुदेव वैकुण्ठ को गए - विवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते। (उपर्युक्त 70, 11)।

इस प्रकार मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण के चरित, वंश और अन्य विविध प्रसंगों को उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित किया गया है। इस पुराण की यह विशेषता है कि पूर्ववर्ती अनेक स्रोतों को स्मरण करते हुए उनको महत्त्व दिया है। इनमें क्रियायोग के लिए गीता, ज्ञानादि के लिए वेदान्तशास्त्र और धर्म के लिए स्मृतियों तथा धर्मसूत्रों का मुख्य स्थान है। यह माना गया है कि जो व्यक्ति अपनी शास्त्रीय मत-सत्ता को प्रेम और उसका पालन करता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहता- *इति क्रियायोग परायणस्य वेदान्तशास्त्र स्मृतिवत्सलस्य। विकर्मभीतस्य सदा न किंचित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके।।* (मत्स्य, 52, 26)।

विश्वाधारम्
40, राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर,
उदयपुर-313001 (राजस्थान)
मो. 9672872766

●

सोच अच्छी होनी चाहिए क्योंकि नजर का इलाज तो मुमकिन है पर नजरिये का नहीं।

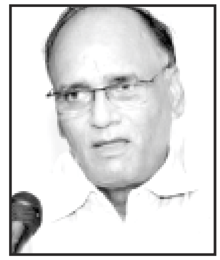

सूर की भक्ति की प्रासंगिकता

रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

भक्ति, धर्म व योग और ज्ञान का लोकतन्त्रीकरण है। धर्म धारणा, योग साधना और ज्ञान गहन स्वाध्याय के कण्टकाकीर्ण पथ से गुजरकर सिद्ध होते हैं। भक्ति का मार्ग प्रेम का मार्ग है सीधा और सरल है, सर्वसुलभ है। इसीलिए प्रेमानुरागिनी भक्ति में पगी सूर की गोपियाँ ज्ञानगर्वीले उद्धय को उपालम्भ देती हैं---

काहे को रोकत मारग सूधो
सुनो मधुप निरगुन कंटक ते राज पंथ क्यों रूँधों
वेद, पुरान इस्मृति सब ढूंढे जुबतिन जोग कहूँ धों (1)
हमरे कौन जोग-विधि साधै
वटुवा, झोरी, दंड, अधारी, इतनिन को आराधै
जाकी कहूँ थाह नहि पैये, अगम अधार अगाधै
गिरधर लाल छवीले मुख पर इते बाँध को बाँधे (2)

स्पष्ट है भक्ति लोक का मार्ग है और योग वेद और साधना का। तुलसीदास ज्ञानी भक्त थे। वे समन्वयवादी थे 'ज्ञानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा' या कहीं-कहीं 'ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा' भी कह देते हैं, परन्तु सूर निष्कम्प स्वर में ज्ञान, योग और साधना के मार्ग से प्रेमा भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं क्योंकि भक्ति लोक का मार्ग है। योग में कठिन साधना करके साधक समाधि तक पहुंचकर अन्तर्यामी का दर्शन पाता है परन्तु प्रेमी भक्त अपने आराध्य से अनन्य प्रेम करके 'भाव समाधि' की स्थिति में उसे पा लेता है। वस्तुतः हर काल में कोई एक स्थिति जीवन के केन्द्र में आ जाती है। उसी के बल पर समाज में क्रान्ति या कोई बड़ा परिवर्तन सम्भव हो पाता है जैसे आज राजनीति जीवन के केन्द्र में आ गई है वैसे ही मध्यकाल में भक्ति जीवन के केन्द्र में आ गयी थी। इसी भक्ति के बल पर समाज की चेतना, मूल्यनिष्ठता, आदर्श चरित्र और परिवर्तन सम्भव हो सकता था। इसीलिए निर्गुण भक्तों ने निराकार की साधना के बल पर समाज को बदलने का प्रयास किया और सगुण भक्तों ने राम और कृष्ण का साकार आदर्श चरित्र-- जिन्हें उन्होंने 'नर लीला' कहा--- के माध्यम से समाज में क्रान्ति उपस्थित की।

भक्ति का संकेत उपनिषदों में हैं। श्वेताश्वेतरोपिनषद का एक श्लोक है---

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः (3)

(जिसकी परमेश्वर में अत्यन्त भक्ति है और जैसी परमेश्वर में है वैसी ही गुरु में भी है। उस महात्मा के प्रति कहने पर ही इन तत्वों का प्रकाश होता है। उस महात्मा के प्रति ही वे प्रकाशित होते हैं)।

परन्तु उपनिषद काल तक भक्ति का लोकावतरण नहीं हुआ था। स्वामी रामानन्द के रामावत सम्प्रदाय में एक दोहा प्रचलित है--

भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट किया कबीर ने, सप्तदीप नौखंड (4)

श्रीमद्भागवत के प्रथम अध्याय में एक अन्य कथा है। नारद जी सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमते हुए भारत के तमाम तीर्थो में जाकर वृन्दावन पहुंचते हैं। वृंदावन में उन्हें एक युवती और अचेत अवस्था में पड़े दो वृद्ध पुरुष मिलते हैं। पूछने पर युवती ने बताया मेरा नाम भक्ति है। ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं। ये देवियाँ (जो मेरे पुत्रों पर पंखा झल रहीं हैं) ये गंगाजी आदि नदियाँ हैं...... मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई परन्तु गुजरात में मुझे बुढ़ापे ने आ घेरा.......... अब जब से मैं वृन्दावन अयी तब से मैं पुनः परम सुन्दरी सुरूपवती नवयुवती हो गयी। परन्तु मेरे पुत्र यथावत बूढ़े हैं।"(5)। उक्त दोनों प्रसंग भक्ति का उदय द्रविड देश अर्थात दक्षिण के तमिल प्रदेश को मानते हैं। परन्तु भागवत के ही 'श्रीमद्भागवत माहात्म्य' के प्रथम अध्याय में अर्जुन के पौत्र परीक्षित और कृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ की भेंट का उल्लेख है जिसमें मथुरा का शासक बज्रनाभ परीक्षित से अपने राज्य में प्रजा के अभाव का वर्णन करता है। तब परीक्षित उसके समाधान के लिए यादवों के पुरोहित महर्षि शाण्डिल्य को बुलाते हैं। महर्षि शाण्डिल्य कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम और परमब्रह्म बताते हुए बज्रनाभ को आदेश देते हैं कि "तुम मेरी आज्ञा से यहाँ बहुत से गाँव बसाओ - भगवान श्रीकृष्ण ने जहाँ जैसी लीला की है उसके अनुसार उस स्थान का नाम रखकर तुम अनेक गाँव बसाओ गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदि में तुम्हें अपने लिए छावनी बनवानी चाहिए।" (6)। यह कथा संकेत करती है कि श्रीकृष्ण को उनके जीवनकाल में ही परमब्रहा का अवतार मान लिया गया था और उनके प्रपौत्र बज्रनाभ ने उनकी भक्ति का प्रारम्भ किया। यह सच्चाई है कि भारत की सम्पूर्ण राजनीति को उँगलियों पर नचाने वाले कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे स्वयं राजा नहीं थे, वे यादवों के पाँच कुलों अन्धक, वृष्णि, भोज, कुकर और सात्वत के सम्मिलित गणसंघ के अध्यक्ष थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैष्णव भक्ति का उद्भव और विकास तथा लोक-विस्तार तीन चरणों में हुआ--- (1) सात्वत यादवों से गुप्तकाल तक--- (1500 ई.पू. से 500 ई. तक)। (2) आलवार --- (सन् 600 ई. से 900 ई. तक)। (3) पश्चात शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर उत्पन्न चार सम्प्रदाय (11वीं-12वीं शताब्दी) - (क) श्री सम्प्रदाय (ख) ब्रह्म सम्प्रदाय (ग) सनकादि या हंस सम्प्रदाय निम्बार्काचार्य भेदाभेद दैतवाद-द्वैताद्वैत और (घ) रुद्र सम्प्रदाय। आदि आचार्य- रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी। सिद्धान्त - विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद।

उक्त सभी आचार्य दक्षिण में हुए। इनमें से प्रत्येक ने अपने मत के समर्थन हेतु प्रस्थानत्रयी-उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र-पर भाष्य लिखकर उसे भारतीय ज्ञान-परम्परा से जोड़ने का प्रयास अवश्य किया। ये सभी आचार्य अपने-अपने मत के लिए उत्तर आए अवश्य परन्तु उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का प्रचार और लोक-विस्तार उत्तर के आचार्यों ने ही किया। हाँ उत्तर के अचार्यों ने अपने-अपने मत को दक्षिण के किसी आचार्य के मत से जोड़ा अवश्य। यथा उत्तर भारत में राम भक्ति की धारा बहाने वाले स्वामी रामानंद ने अपने मत रामावत को रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय से जोड़ा और निर्गुण-सगुण राम की उपासना प्रारम्भ करायी पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक बल्लभाचार्य ने अपने मत को

विष्णु स्वामी के रूद्र सम्प्रदाय से जोड़ा। बल्लभाचार्य का समय (1479-1531) माना जाता है। उनके मत को बल्लभ या बल्लभी मत भी कहा गया। इनके पुत्र विठ्ठलनाथ जी ने अपने पिता और गुरु बल्लभाचार्य के 4 और 4 अपने शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। ये अष्टछाप कवि हैं- (1) कुंभनदास -(गोरवा क्षत्रिय) - जमुनावतो गाँव। (2) सूरदास - (जन्मांध ब्राह्मण) - सीही ग्राम। (3) परमानंददास - कान्यकुब्ज ब्राहाण - कन्नौज। (4) कृष्णदास - कुनवी - शूद्र - गुजरात। (5) छीत स्वामी-मथुरा के चतुर्वेदी - मथुरा। (6) गोविन्द स्वामी -सनाढ्य ब्राह्मण - भरतपुर, राजस्थान का आँतरी ग्राम। (7) चतुर्भुज दास - कुंभनदास के पुत्र - तुलसीदास के चचेरे भाई। (8) नंददास - ब्राहाण - तुलसीदास के चचेरे भाई।

बल्लभाचार्य जी ने कहा --

"वेदा श्रीकृष्ण वाक्यनिक व्याससूत्राणि चैव हि। समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।।" (अर्थात --- वेद श्रीकृष्ण के वचन हैं (अर्थात गीता) व्यास सूत्र (ब्रह्मसूत्र) भी, परंतु व्यास की समाधि भाषा (श्रीमद्‌भागवत) जो उत्तरोत्तर पूर्व के सन्देह की निवारक है। भागवत की सर्व संशय निवारक तथा असंदिग्ध है।)। इसलिए उन्होंने अपने पुष्टिमार्गी भक्तों को भागवत के अनुसार प्रभु-लीला के गायन का निर्देश दिया था। अष्टछाप के सभी भक्त उत्कृष्ट संगीतज्ञ और श्रेष्ठ कवि थे। ये विभिन्न स्थानों पर रहते थे और श्रीकृष्ण के बालरूप विग्रह श्रीनाथ जी के मंदिर में सेवा के समय कीर्तन के निमित्त आया करते थे। सूर का निवास परासौली ग्राम में था (जो परम रासस्थली का अपभ्रंश है) जहाँ अब उनका भव्य मंदिर बन गया है और चन्द्रसरोवर ---- जिसके किनारे अष्टछाप के आठों भक्तों की छतरियाँ भी बन गयीं हैं। पुष्टिमार्ग ने भक्ति का अधिकारी छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, सबको बनाया। उन्होंने मन्दिर के द्वार सबके लिए खोल दिए। दूसरे उन्होंने सदियों से यवन-शासकों द्वारा पीड़ित-प्रताड़ित और शोषित मृतवत आत्मविश्वास समाज को निर्भिक बनाया, इतना निर्भिक की महागरीबी में दिन बिता रहे कुंभनदास अकबर के बुलाने पर भी पहले तो उसके दरबार में गए नहीं और गए भी तो उसके सामने बैठकर गाया-

भक्तन कहा सीकरी सों काम। आवत जाकत पनहिया टूटी विसरि गयो हरि नाम। जिनके मुख देखत दुख उपजैं जिनकों करन परे प्रनाम । कुंभनदास लाल गिरधर बिन और सबै बेकाम ।। (7)

और यही निर्भीकता थी जब बादशाह अकबर के कुछ माँगने का अनुरोध करने पर उन्होंने कहा था, "अगर आप सचमुच कुछ देना चाहते हैं तो फिर कभी हमें दरबार में मत बुलाना"। पुष्टिमार्ग की सामाजिक क्रान्ति का दूसरा पक्ष था समता मूलक समाज की स्थापना का प्रयास। इस तथ्य का प्रमाण अष्टछाप में सम्मिलित दो क्षत्रिय पिता-पुत्र और मन्दिर के अधिकारी शूद्र कृष्णदास दे रहे थे और इसकी तीसरी क्रान्ति थी मध्य काल के उस रूढ़िवादी समाज में चतुर्भुजदास की पहली पत्नी की मृत्यु के बाद गुरुवर गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने एक बाल विधवा के साथ उनका पुनर्विवाह करवाया।

सूरदास की सामाजिक चेतना प्रवेश का मार्ग उनके काव्य से होकर गुजरता है। सूर ने भागवत से कुछ आख्यान उठाये हैं और उन्हीं के माध्यम से अपना सामजिक सन्देश दे दिया है। शाल्व ने द्वारका पर आक्रमण किया था उसे मारकर कृष्ण दंतवक्र का भी वध करके अपने नगर आनंद से रहने लगे। फिर बलराम तीर्थाटन के लिए जाते हैं। अनेक तीर्थों में जाकर वे नैमिषारण्य पहुँचते हैं, सूर कहते हैं--

"राम गंगादि जमुनादि अस्नान करि, नैमिसारण्य पुनि जाइ न्हाय। सूत तहाँ कथा भागवत की कहत है, रिषि अठासी सहसहुत स्त्रोता। राम को देखि सनमान सबही कियौ, सूत नहि उठे निज जानि वक्ता। राम तिहिं हत्यौ तब सब रिषिन मिल कह्यौ, विप्रहत्या तुम्हें लगी भाई। सूत-सुत थापि सब तीर्थ अस्नान करि,

पाप जो भयो सो सब नसाई।"(8)।

बलराम जब नैमिषारण्य पहुँचे तब वहाँ रोमहर्षण सूत जी व्यास पीठ पर भागवत की कथा कह रहे थे। अट्ठासी हजार ऋषि उनके स्त्रोता थे। सभी ऋषियों ने उठकर बलराम का सम्मान किया परन्तु व्यास पीठ पर बैठे अपने को वक्ता मानने वाले सूत जी बैठे रहे। बलराम ने क्रोधित होकर कुशा की नोक से उनका वध कर दिया तब सब ऋषियों ने उनसे कहा, "तुम्हें ब्रह्म हत्या लग गई। अब तुम सूतपुत्र को व्यास गद्दी पर विराजमान करो और सब तीर्थो में जाकर स्नान करो, तभी तुम्हें ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति मिलेगी तब बलराम ने रोमहर्षण के पुत्र को सूत की गद्दी पर बैठाया और तीर्थों में स्नान कर ब्रह्म हत्या के पाप का प्रायश्चित किया"। इसके दो सामाजिक संदेश स्पष्ट हैं (1) सूत (रथ हॉकने वाले) जैसे शूद्र को भी व्यास गद्दी पर बैठने का अधिकार था। व्यास-गद्दी पर बैठा व्यक्ति पूज्य होता है और उसकी कथा के श्रोता 88000 ऋषि थे। ज्ञान और भक्ति पर सबका अधिकार था, (2) दूसरा तथ्य यह कि सूर की दृष्टि में व्यास गद्दी पर बैठा शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है और उसकी हत्या करने वाले उस काल के महानतम योद्धा और यादव गणसंघ के अध्यक्ष श्रीकृष्ण के बड़े भाई को भी उसकी हत्या को ब्रह्म हत्या मानकर उसका प्रायश्चित करना पड़ा था। भक्ति में भक्ति करने वाला ही बड़ा है, अन्य कोई नहीं होता जैसे रामकथा में काकभुशुण्डि (चाण्डाल पक्षी) का श्रोता भी भगवान विष्णु का वाहन पक्षीराज गरूड़ हैं।

सूर अपनी सामाजिक चेतना का मौलिक स्वर 'भ्रमरगीत' के माध्यम से गुँज़ाते हैं। इसमें वे गोपियों के माध्यम से उनके मुख से बोलते हैं। सूर की गोपियाँ भागवत की गोपियाँ से भिन्न हैं। भागवत की गोपियाँ केवल इतना चाहती हैं कि ज्ञान और योग की तरह उनकी प्रेमाभक्ति को भी प्रभु प्राप्ति का साधन मान लिया जाय परन्तु सूर की गोपियों का स्वर संशयहीन है। वे आक्रामक हैं, व्यंग्यमयी हैं, उनकी वक्रोक्तियाँ उद्धव के साथ-साथ सूर के समकालीन (पूर्ववर्ती भी) योगियों और ज्ञानियों को भी बेधती हैं। वे कभी उद्धव से "आयो घोष बड़ौ व्यौपारी" कहकर उन्हें 'ठग' बताती हैं और कभी "ऊधौ जोग सिखावन आए। सृंगी, भस्म, अधारी, मुद्रा दै ब्रजनाथ पठाए" जैसे कथनों से कृष्ण को भी षड़यन्त्रकारी और उद्धव को उनके षड़यन्त्र का पालक कहती हैं और कभी उद्धव को प्रेम से विमुख करने वाला पाँड़े बताकर उनके ज्ञान-गर्व पर चोट करतीं हैं - *आए जोग सिखावन पाँड़े परमारथी, पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँड़े (9)।*

ध्यातव्य है, उद्धव यादव हैं कृष्ण के सखा है परन्तु गोपियों को ज्ञान, योग और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। इसलिए उनको 'पाँडे' कहकर गोपियों ने जो व्यंग्य किया है वह अत्यन्त तीखा है। 'परमारथी' में भी चुभने वाली वक्रोक्ति है परन्तु सर्वाधिक तीखापन "पुराननि लादे" में है। उसके माध्यम से गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव ने ज्ञान आत्मसात नहीं किया है। वे जो ज्ञान बघार रहे हैं वह उसी तरह उनके मस्तिष्क पर लदा हुआ है जैसे गधे या ऊँट पर भार लदा होता है और जो रत्न मंजूषा, स्वर्ण, अन्न और भूसा को समान भाव से ढोता है। यहाँ सीधे-सीधे ज्ञान-गर्वीले ब्राह्मणों को निशाने पर लिया गया है।

सूर की गोपियाँ क्रान्तिकारिणी हैं। वे धर्मसत्ता, ज्ञानसत्ता, राजसत्ता, लोकसत्ता और पुरुषसत्ता को एक साथ ललकारतीं हैं जब वे उद्धव से कहती हैं-- *ऊधौ जाहु तुम्हें हम जाने। ब्रजनारिन सों जोग कहत हौ बात कहत न लजाने। बड़े लोग न विवेक तुम्हारे ऐसे भए सयाने। कहाँ अबला कहाँ दसा दिगम्बर मष्ट करौ पहिचाने (10)* तो एक साथ ज्ञानसत्ता, योगसत्ता और पुरुषसत्ता को ललकार रहीं होतीं हैं। आद्य शंकराचार्य जब-- *जटिलो मुण्डी लुंच्छित केशः काषायम्बर बहुकृत वेशः। पश्यन्नपि चनपश्चति मूढः उदर निमित्तं बहुकृतं वेषः (11)।* (बड़ी जटाएँ, केशरहित सिर, बिखरे बाल, काषाय (भगवा) वस्त्र और भाँति-भाँति के बेश ये सब अपना पेट भरने के लिए धारण किए जाते हैं। अरे मोहित मनुष्य तुम इसको देखकर भी क्यों नहीं देख पाते हो।) आद्यशंकराचार्य के कथन को गोपियाँ अति

साधारण भाषा में कह देतीं हैं। यही नहीं वे पुरुषवादी सत्ता को ललकारने का साहस कृष्ण और उद्धव दोनों को एक साथ प्रत्यारोपित करते हुए करती हैं-

जाहु-जाहु ऊधौ जाने हौ। जैसे हरि तैसे तुम सेवक, कपट चतुरई साने हौ।। यह उपदेस देहु लै कुबिजहिं जाकै रूप लुभाने हौ। सूरदास प्रभु हम सब खोटी, तुम तो बारह आने हौ। (12)

नारी-चेतना और महिला सशक्तिकरण का एक अन्य प्रसंग आख्यान के रूप में है। भागवत में यह आख्यान दसवें स्कन्ध के 23वें अध्याय में है। श्रीकृष्ण गायें चराते हुए ग्वालबालों के साथ वन में घूम रहे हैं। ग्वाल-वालों को भूख लगती है तब कृष्ण उन्हें पास में ही यज्ञ करते ब्राह्मणों के पास भेजते हैं। ब्राह्मण यज्ञ के निमित्त तैयार रसोई से ग्वालों को भोजन देने से इनकार कर उन्हें भगा देते हैं। तब कृष्ण उन्हें ब्राह्मण-पत्नियों के पास भेजते हैं। वे अपने को सौभाग्यशाली मानकर अनेक सुस्वाद् व्यंजन बनाकर श्रीकृष्ण के पास चल देतीं हैं। एक ब्राह्मण अपनी पत्नी को बलात् रोक लेता है परन्तु वह प्राण-विसर्जन कर सूक्ष्म शरीर से सभी नारियों से आगे पहुँच जाती है। सुर ने इस आख्यान का विस्तार से एक पद में वर्णन किया है। कुछ ध्यातव्य पक्तियाँ दृष्टव्य हैं---

"काहू पुरूष निवार्‌यौ आई कहाँ जाति है री अतुराइ।

तिन तो कह्यौ न कीन्हौ कानी तन तजि वली विरह अकुलानी।

धन्य--धन्य वे परम सभागी मिली जाइ सबहिन ते आगी" (13)

इस नारी को विघृता नाम देते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपने विलक्षण खण्ड काव्य 'द्वापर' में उसका 'आत्मकथ्य' दिया है। वह कहती है-

"जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रुक सकती।

इस अन्याय समक्ष मरूँ मैं कभी नहीं झुक सकती।

किन्तु आर्य -- नारी तेरा है केवल एक ठिकाना ।

चल तू वहीं, जहाँ जाकर फिर नहीं लौटकर आना।" (14)

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि सूर क्रान्तिदर्शी और कालजयी कवि हैं। वे पुष्टिमार्ग की परम्परा में रहकर भी स्थान-स्थान पर परम्परा को अतिक्रमित करते हुए अपनी मूल्यपरक, लोकहितकारी जीवन-दृष्टि का परिचय देते चलते हैं। इसीलिए वे कृष्ण को पूर्णपुरुषोत्तम मानकर उनके माध्यम से पर्यावरण-रक्षा, परम्परा-प्रक्षालन, रूढ़ि-भजन, नारी-सम्मान और लोक- कल्याण आदि उनकी लीलाओं के वर्णन में ही पिरोते गये हैं। इसलिए उनका काव्य कालजयी है, वह कल भी प्रासंगिक था आज भी प्रासंगिक है और कल भी प्रासंगिक रहेगा।

सन्दर्भ

(1) सूर सागर (द्वितीय खण्ड) -- टीकाकार एवं संपादक - भगवती प्रसाद देवपुरा, पद -- 4508, पृष्ठ1115 -- साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा पाटोत्सव सं. 2066 वि., सन् 2010। **(2)** वही -- पद -- 4513 -- पृष्ठ -- 1115। **(3)** श्वेताश्वतरोपिनषद -- 6/23। **(4)** रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, सम्पादक--डा. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ -- 40 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चैत्र रामनवमी सम्वत् 2012 वि.। **(5)** श्रीमद्भागवत 1/45--51। **(6)** वही -- श्रीमद्भागवत महात्म्य -- पहला अध्याय। **(7)** अष्टछाप सागर -- भाग--1 सम्पादक-- डा. अच्युतलाल भट्ट, पद -- 397, पृष्ठ -- 104 श्रीराधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, धर्मसंघ संस्कृत रमणरेती वृन्दावन--प्रथम संस्करण-- 6 फरवरी सन् 2003। **(8)** सूरसागर (द्वितीय खण्ड) पद -- 4841, पृष्ठ -- 1299। **(9)** वही -- पद - 4222, पृष्ठ - 974। **(10)** वही - पद - 4193, पृष्ठ - 933। **(11)** भक्तिविवेकामृतं -- मोहमुद्गर (शंकराचार्य) श्लोक -- 15, पृष्ठ--15, काव्यानुवाद डा. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर' ओन लाइन बुक स्टोर आगरा -- 2021। **(12)** सूरसागर -- पद -- 4138 -- पृष्ठ -- 932। **(13)** वही -- भाग-1, पद--1418 पृष्ठ -- 756 प्रथम संस्करण-- पाटोत्सव संवत 2065 वि. सन् 2008 ई.। **(14)** द्वापर (विघृता) मैथिलीशरण गुप्त -- पृष्ठ - 42 साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) चतुर्थ संस्करण संवत 2002 वि.।

86, तिलक नगर,
बाईपास रोड, फीरोजाबाद-283203
मो. 991779789, वाट्सअप-9412316779
ई मेल- dryayavar@gmail.com

आळ्वारों का तमिल साहित्य में योगदान

डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन

तमिल साहित्य में छठी शताब्दी से नौवीं-दसवीं शताब्दी तक का काल भक्ति काल माना जाता है। इस युग में शैव नायनमारों एवं वैष्णव आळ्वारों ने भक्ति की रसधारा प्रवाहित कर जन-मानस को भक्ति की ओर आकृष्ट किया। वस्तुतः ये आळ्वार भक्त भावुक, कोमल, रससिक्त एवं भक्ति भावना से आप्लावित रहने वाले कविगण थे। वैष्णव भक्त आळ्वारों के गीतों में भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा है, परंतु विष्णु के दो प्रमुख अवतारों - रामावतार एवं कृष्णावतार ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया। इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन जितना रमा उतना रामावतार में नहीं। श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने ऐसा सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है, मानों उन्होंने उन लीलाओं का प्रत्यक्ष आवलोकन किया हो। इन आळ्वारों को कृष्ण संबंधी अनेक कथाएँ प्राचीन पुराणों में प्राप्त हुई थीं। साथ ही लोक में प्रचलित अनेक कथाओं को भी इन्होंने कृष्णचरित में मिला दिया। कल्पना के बल पर इन्होंने इन कथाओं में वर्णित नाना लीलाओं का काव्योचित चित्रण अपने भक्ति गीतों में प्रस्तुत किया।

द्वादश आठळ्वारों द्वारा समय-समय पर गाए गए गीतों का संग्रह तमिल भाषा में 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' के नाम से प्रसिद्ध है जो तमिल साहित्य की अमूल्य निधि है। "प्रबंधम्" एक कवि की रचना नहीं है। इसमें चौथी-पाँचवीं शताब्दी से लेकर नौवीं-दसवीं शताब्दी तक के दीर्घकाल में विभिन्न अवसरों पर अवतरित आळ्वार भक्तों के गेय पदों का संकलन है, जिन्हें श्री नादमुनिगल ने संग्रहित करके उनका संरक्षण किया था। श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में द्रविड़ देश को भक्ति का जन्म-स्थान कहा गया है। कबीरदास की पंक्ति भी इसी संदर्भ में चरितार्थ है- *'भक्ति द्रविड़ उपजी लाए रामानंद। प्रकट किया कबीर ने सात द्वीप नवखड'*। दक्षिण में और वह भी तमिलनाडु में उत्पन्न वैष्णव भक्त, "आळ्वार" कहलाते हैं। आळ्वार शब्द का अर्थ प्रेम सागर में डूबने वाले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के मूल तत्व तक पहुँच कर उसके ध्यान में मग्न रहने वाले है। इन भक्तों ने परमात्मा का साक्षात्कार करके उसके सौलभ्य परत्वगुणों के आत्मानुभव को अपने पदों में व्यक्त किया है। इन आळ्वारों का समय तमिल साहित्य के 'तृतीय संद्योतर' काल के उपरांत ही है।

साहित्य की कसौटी पर आळ्वारों की रचना तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी

जाती है। विभिन्न पद-शैलियों, रस, अलंकार, उक्ति चमत्कार के अतिरिक्त भक्ति साहित्य की आधारशिला के रूप में तमिल साहित्य में आळवार साहित्य का महत्व आज भी अक्षुण्ण एवं एकाधिकार के रूप में है। सामान्यतः आळवरों के साहित्य के विषय में यह कह दिया जाता है कि उनके गीत भावों में चरम उद्रेक के क्षणों की आवेशमयी अभिव्यक्ति है। वस्तुतः ये गीत भावों के चरम उद्रेक के क्षणों में अभिव्यक्त हुए हैं, किंतु इनकी सहज अभिव्यक्ति में जो अकृत्रिमता, सौंदर्य, काव्य गुण, काव्य रूप और छंद अभिव्यक्त हो गए हैं, वे भूतो न भविष्यति हैं। आळवार साहित्य में ये काव्य रूप रूप पाए जाते हैं। **1.** नीतिकाव्य, **2.** लोक-गीत, **3.** मुक्तक-रचना शैली, **4.** प्रबंध काव्य और **5.** खंड काव्य। नीतिकाव्य के पुनः दो रूप इनकी रचनाओं में हमें प्राप्त होते हैं। पहला रूप शुद्ध नीति काव्य का है। इनमें वे गेय पद आते हैं जो भक्त कवियों द्वारा भगवान के समक्ष आत्म निवेदन के रूप में अभिव्यक्त हैं। गेयत्व इनमें सहज गुण है। दूसरे रूप में गीति काव्य आख्यानात्मक हैं। आळवार भक्तों ने अपनी रचनाओं में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों का भी सुंदर समावेश किया है। तमिल प्रदेश में लोकगीतों की परंपरा मौखिक रूप से चली आ रही है। विविध अवसरों पर विविध पर्वों पर गाए जाते हैं।

छंद : तमिल छंदों के विषय में यह सामान्य ज्ञान आवश्यक है कि तमिल में तुक पद्य के प्रत्येक चरण के अंत में न होकर प्रारंभ में होती है। साधारणतः प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द के द्वितीय अक्षर अथवा द्वितीय और तृतीय अक्षर में अनुप्रास होने की आवश्यकता समझी जाती है। तमिल काव्य में प्राचीन काल में चार प्रकार के छंदों के प्रयोग हुए हैं। वे हैं :- 'आसिरियप्पा', 'वेण्पा', 'वंचिप्पा' और 'कलिप्पा'। इनमें 'आसिरियप्पा' सबसे प्राचीन छंद मालूम होता है। 'वंचिप्पा', आसिरियप्पा का ही विकसित रूप है। 'कलिप्पा' प्राचीन वेण्पा का परिवर्तित रूप है। प्राचीन काल में वेण्पा में दो से बारह तक चरण होते थे। परंतु बाद में वेण्पा में चार ही चरण रखे गए। प्रथम तीन आळवारों अर्थात् पोयगै आळवार, भूततालवार और पेथालवार की रचनाओं में केवल वेण्पा छंद का ही प्रयोग हुआ क्योंकि उनके समय तक अन्य आळवारों के काव्य में प्रयुक्त कुछ छंदों का आविर्भाव नहीं हुआ था। इस काव्य में प्रयुक्त छंदों की एक खास विशेषता यह है कि प्रत्येक पद्य के अंतिम चरण का अंतिम शब्द उसके बाद के पद्य का प्रथम शब्द बन जाता है। इस प्रणाली को 'अंतादि' कहते हैं। यह प्रणाली पद्यों को एक शृंखला में बांधती है। आळवारों की प्रायः रचनाओं में प्रारंभ से अंत तक छंदों की यह 'अंतादि प्रणाली' देखी जा सकती है। इससे यह किसी भी कवि के लिए एक असाधारण काव्य है।

2. मुक्तकत्व और प्रबंधत्व का स्वरूप : - मुक्तक के अंतर्गत प्रबंधम् के 'इपर्या खंड' में संग्रहित रचनाओं में प्रायः मुक्तक ही दृष्टिगोचर होते हैं। 'तिरुविरुत्तम', 'तिरुच्चंदविरुत्तम्', 'तिरुपल्लि एलुच्चि' सबके सब मुक्तक काव्य के अंतर्गत ही हैं।

3. पात्र परिकल्पना और चरित्र-चित्रण : आळवार साहित्य में दो प्रकार के पात्र आए हैं। प्रथम पात्र के रूप में स्वयं कवि हैं और द्वितीय पात्रों के रूप में श्रीकृष्ण, श्री राम, विष्णु वेंकटगिरि, यशोदा, देवकी आदि पात्र आते हैं। द्वितीय प्रकार की पात्र-परिकल्पना में संदर्भित पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

4. भाव व्यंजना : 'तिरप्पावै' रति के अंतर्गत देवरति और सामान्य रति दोनों की भाव-व्यंजना से परिपुष्ट है। आण्डाल शास्त्रीय संगीत में निपुण थीं। उन्होंने तमिल शास्त्रीय संगीत के आधार पर अपने पदों की रचना की है। आळवारों ने अपने पदों में सामान्य गेय पद्धति को अपनाया। भाव व्यंजना की दृष्टि से प्रबंधम साहित्य में स्वाभाविकता, सरसता, मौलिकता, मर्मस्पर्शिता इत्यादि गुण पिरोए हुए हैं।

इसके भाव-सौंदर्य में उतनी ही गहनता है जितनी गहनता किसी भी उत्कृष्ट साहित्य में अपेक्षित अथवा वांछनीय है। दिव्य प्रबंध में भक्तिन कवयित्री आण्डाल के 'तिरुप्पावै प्रबंध' में प्रतीकों की भरमार है। एक उदाहरण ध्यातव्य है - 'मारि मलै मुळैंचिल मन्निककिडंढुरंगुम' अर्थात वर्षाकाल में पर्वत की गुफा में निश्चिंत पड़ा सोने वाला सिंह।

5. भाषिक संरचना : आळवार भक्तों के समस्त पद साहित्यिक तमिल भाषा में रचित हैं। यह भाषा संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से मिश्रित तमिल भाषा है। तमिल भाषा के क्रमिक विकास में आळवार भक्तों का बड़ा हाथ है। आळवार भक्तों के पूर्व पाँचवीं शताब्दी के पूर्व तमिल काव्य में जो भाषा प्रयुक्त थी वह विशुद्ध तमिल भाषा थी। उसमें संस्कृत भाषा के शब्द नहीं के बराबर हैं। आळवार भक्तों के समय में ही संस्कृत के शब्द तमिल में आये क्योंकि आळवार भक्त संस्कृत के भी विद्वान थे। फिर भी ये शब्द कठिन न होकर सरल और सरस हैं। प्रस्तुत प्रक्रिया से तमिल भाषा का शब्द भंडार समृद्ध हुआ। इस तरह के प्रयोग से तमिल भाषा में एक नई शैली (मणिप्रवाळम) एवं शक्ति का संचार हुआ। अनेक कारणों से संस्कृत शब्दों के रूप तमिल में अधिक सरल और मधुर बन जाते हैं। जैसे -

पत्र - पत्तिरम	पुस्तक - पुस्तहम
शास्त्र - चात्तिरम	वैकुण्ठ - वैकुन्तम
कर्म - करुमम	विषय - विषयम

आळवारों की भाषा की विशेषता चित्रात्मकता है। अधिकतर शब्द-चित्रों द्वारा उनकी भाषा में बिंबविधायक शक्ति का निर्माण हुआ है। इन शब्द-चित्रों के निर्माण में सर्वाधिक योग अनुकरणात्मक शब्दों का रहा है जिन्हें हिंदी में सहचर शब्द की संज्ञा से विभूषित करते हैं अथवा जिसे अलंकार-शास्त्र की दृष्टि से 'वीप्सा' के अंतर्गत समेट सकते हैं, जैसे- कलै वणक्कु नोक्कु अरक्कि मूक्के नीक्कि। (दिव्य प्रबंध (हि.स. 1 भाग-2, छंद - 745, पृ.-176)। 'दिव्य प्रबंधम्' में मुहावरों और लोकोक्तियों के भी बड़े सफल प्रयोग हैं। 'प्रबंधम' की भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं जिनमें स्थानीय प्रयोगों ने चार चाँद लगाए हैं। इन ध्वनियों से वह प्रभविष्णु और सरस हो गयी है।

ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक गुप्तवंश के राजाओं ने भारतवर्ष में भागवत-धर्म का बहुत प्रचार किया। गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने पर भी दक्षिण भारत में शैवमत के साथ भागवत धर्म की प्रबलता बनी रही। भागवत या वैष्णव धर्म के आळवार भक्तों के तमिल गीतों की परंपरा 'प्रबंधम्' में विद्यमान है जो दक्षिण के ही एक भक्त नाथमुनि द्वारा संग्रहित है।

आळवार भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य कहते थे। उनके अनुसार भक्ति के साधन और प्रपत्ति द्वारा संसार के आवागमन से मुक्ति तथा भगवान का सम्मिलन होता है। भक्ति के अंतर्गत प्रपत्ति को उन्होंने बड़ा महत्व दिया था। आळवारों का यह भागवत धर्म सभी जातियों एवं सभी श्रेणियों के मनुष्यों के लिए खुला हुआ था।

आळवार भक्तों की रचनाओं में कहीं भी पुनरुक्ति नहीं दिखाई पड़ती। इनका साहित्य सभी वर्गों के कवियों एवं भक्तों के लिए खुला हुआ था। आळवार साहित्य शक्ति के पक्ष के अंतर्गत स्वानुभूत अनुभवों, भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों का साहित्य है। आळवारों के जैसा प्राकृतिक सुषमा का वैविध्य अन्यत्र दुर्लभ है। आळवार भक्तों के साहित्य में दक्षिण भारत के संगीत को उसके पूर्ण वैभव के साथ इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है कि हमारा श्रद्धा भाव उमड़ पड़ता है। वस्तुतः 'दिव्य प्रबंधम्' ही परवर्ती समस्त वैष्णव भक्ति साहित्य का मूल स्रोत है। एक ही वाक्य में कहें तो ये आळवार संत 'गीता' और 'भागवत' तथा 'गीता' और 'रामानुज' के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।आळवार भक्तों ने जीवन को समग्र रूप में देखा था, इसीलिए उनके काव्य में

जीवन के संघर्ष, विवशता, बेचैनी, ज्ञान, भक्ति आदि के भिन्न-भिन्न आयाम हैं।

आळवारों का साहित्य लोकधर्म की स्थापना करता है। आळवार भक्तों ने समस्त तमिल क्षेत्र के सौंदर्य, रीति-रिवाज, पूजा-पद्धति, भक्ति भावना के अतिरिक्त स्थाई भक्ति-साधना को प्रभावित, प्रशंसित और विकसित किया है। आळवार भक्तों ने ज्ञान, कर्म और उपासना के तीन मार्गों की अपेक्षा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन एवं आत्मनिवेदनम को भगवद प्राप्ति हेतु सुगम मार्ग के रूप में आविष्कृत किया। गोदा ने मीरा के आगमन की मानों पूर्व सूचना दी। भगवत भक्ति को केवल भानानुभूति की वस्तु बताकर उन्होंने इसे जन-जन के लिए साध्य बना दिया। प्रेम-लक्षणा भक्ति के संदर्भ में द्वादश आळवार और अष्टछाप का प्रेम साहित्य, अमर हो गये हैं। इस कसौटी पर वे एक ही पन्ने के दो पृष्ठ हैं, पहले पर यदि आळवार हैं तो दूसरे पर अष्टाछाप के कविगण। शरणागति अथवा प्रपत्ति के उद्घोषक एवं पोषक के रूप में दोनों का ही साहित्य अनुपम और अद्वितीय है। वात्सल्य के क्षेत्र में दोनों का ही साहित्य सर्वांगपूर्ण एवं ध्यातव्य है। विप्रलम्भ शृंगार के संदर्भ में भी दोनों का ही साहित्य विश्वजनीन साहित्य में अग्रणी माने जाएंगे। कृष्ण की विविध लीलाओं, अलौकिक रूप माधुरी, परतत्व, माधुर्य प्रेम आदि के अनेक क्षेत्रों में आळवार साहित्य का महत्व उपजीव्य काव्य के रूप में अक्षुण्ण है।

दर्शन की दृष्टि से अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि समस्त दर्शनों का समाहार आळवार साहित्य में है। भक्ति को सर्वोपरि महत्व देते हुए ईश्वर-नाम-महिमा, ईश्वर-स्तुति, ईश्वर-शरणागति अथवा प्रपत्ति, गुरु महिमा, सत्संग और वैराग्य पर आळवार साहित्य में सविस्तार प्रकाश डाला गया है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत की एकता, अभेदता और अखंडता का साहित्य, आळवार (तमिल) और अष्टछाप (हिंदी) साहित्य है। दक्षिण भारत का आळवार साहित्य और उत्तर भारत का अष्टछाप साहित्य, दोनों को पढ़ने पर हम न तो तमिल भाषी रह जाते हैं न हिन्दीभाषी, वस्तुतः हम 'भारतवासी' बन जाते हैं।

ब्लाक 65, महालक्ष्मी अपार्टमेन्ट्स
सी-303, (III) तल, 11वाँ एवेन्यू,
अशोक नगर, चेन्नै - 600083
मो. 9176092616

कर्त्तात्रयी

गीता की दृष्टि से तीन प्रकार के कर्ता होते हैं--

(1) **सात्विक कर्त्ता -** जो आशक्ति रहति है। अहंकार रहित है। धैर्य व उत्साह से भरा है। सफलता का विकार नहीं-- यानी गर्व नहीं। असफलता का विकार नहीं- यानी हताशा नहीं। दोनों में निर्विकार।

(2) **राजसकर्त्ता -** जिसमें हर्ष है और शोक है। जो हिंसात्मक है। जो मलिन है। जो फल का लोभी है। जो रागी है। जो लोभी है।

(3) **तामसकर्त्ता -** जो चंचल चित् है। जो असंस्कारी-- उजड्ड है। जो कपटी है। जो आलसी है। जो सदा शोकाकुल रहता है। जो करने योग्य कार्य को टालता-आगे पर सरकता है-- यानी दीर्घसूत्री है। जो असभ्य है। ठग है। दूसरी की वृत्ति को काटनेवाला है-- विघ्नसंतोषी है।

हम यदि भीतर झांककर जांचें अपने को तो प्रायः हमें लगेगा हम तामस तो नहीं-- राजस कर्त्ता हैं। जब जरा 'मैं' को मिटाने की इच्छा करें, धीरज रखें, शुभ कामों में न लगावें, अपना काम करते हुए पराए के काम में भी रुचि लेना शुरू करें तो हमारे भीतर सात्विक कर्त्ता झांकने लगेगा। इस प्रकार सोपानों पर चढ़ते हुए संभवतः त्रिगुणातीत के लक्ष्य को भी पा जायें।

(गीता-18वें अध्याय के 26-28 श्लोकों के भाव) *- पं. अक्षयचंद्र शर्मा*

संत तुकाराम के अभंगों में सामाजिक मूल्य

घुंघरू परमार

प्रस्तुत शोध आलेख संत तुकाराम के व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक दर्शन एवं उनके जीवन की एक महान यात्रा को लेकर है। जिसमें उनके व्यक्तित्व के विविध क्रिया पक्षों एवं मानवतावादी कार्यों से जुड़े पहलुओं की संघर्ष-गाथा है। भक्ति-आंदोलन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका ने आम जन को जीने की नई दिशा दी। जीवन और स्वयं से हारे हुए लोगों के लिए उन्होंने क्रांति की मशाल उनके हाथों में पकड़ाई। वर्ण-व्यवस्ता और अस्पृश्यता को उन्होंने हर तरीके से मानवता के विरुद्ध बताया। उनकी 'अभंग गाथा' सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध मानवता को बचाने के लिए जागरूक करने हेतु एक आंदोलन है।

भारत के इतिहास में मध्यकाल का ऐतिहासिक महत्व रहा है। जब देश की जनता गुलाम होकर जी रही थी। तब उस समय के संतों ने भारतीय आत्मा को जगाया। उन्होंने अपने नव चैतन्य से लोगों का सामाजिक रूप से पुनरुत्थान किया। कबीर, नानक, शंकराचार्य, नामदेव, नरसी मेहता इत्यादि संत इसी श्रेणी में आते हैं। इस आंदोलन की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में संत तुकाराम का बड़ा ही योगदान है। संतों ने कोई शास्त्र या व्याकरण नहीं पढ़ा, उन्होंने सब कुछ लोक से ही ग्रहण किया। उनकी वाणी ही सूत्र बचन हैं। ऐसा माना जाता है कि दुख में इंसान दुनिया की सच्चाई देख पाता है, सुख की निःसारता समझ पाता है, फिर इंसान विरक्त हो जाता है। "जो सत्पुरुष दुख के कारण से पूरे-पूरे विरक्त हो जाते हैं और कभी सांसारिक सुखों की ओर जरा भी नहीं देखते वे ही श्री तुकाराम महाराज की सी संसार में प्रसिद्धि पाते हैं।"[1]

तुकाराम महाराज का जन्म ईस्वी 1608 में देहूँ गाँव में माना जाता है। यह गाँव महाराष्ट्र की इंद्रायणी नदी के तट पर बसा है। तुकाराम का जीवन भी कबीर और रविदास की तरह ही था। संत तुकाराम के काल निर्धारण के संदर्भ में भी काफी मतभेद है। देहूँ गाँव महाराष्ट्र के प्रसिद्ध पवित्र स्थानों में एक समझा जाता है। इस गाँव के लोग जाति के शूद्र हैं। कुछ खेती-बाड़ी भी करते हैं। संत तुकाराम स्वयं शूद्र जाति से हैं। उन्होंने हिम्मत और सच्चाई से स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। "मेरी जाति शूद्र है, मैंने वैश्य का व्यवसाय किया। शुरू से ही मेरे कुल में पांडुरंग भगवान की पूजा होती थी।"[2]

संत तुकाराम का जीवन आर्थिक रूप से अत्यंत संपन्न तो नहीं था परंतु विपन्नता भी नहीं थी। अपने पिता की तीनों संतानों में से योग्य तुकाराम ने ही अपने पिता के व्यवसाय को आगे बढ़ाया। व्यवसाय के अलावा उन्होंने भगवान विट्ठल के प्रति अपनी भक्ति नहीं छोड़ी।

उनके घर से भगवान विट्ठल का मंदिर पंढरपुर काफी दूर था। दूरी के बावजूद भी संत तुकाराम पंढरपुर वारी (यात्रा) सप्ताह में एक बार अवश्य करते थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान विष्णु ने इन्हें सपने में दर्शन देकर कहा कि तुम अपने घर की बगल में खुदाई करो जहाँ तुम्हें मेरी मूर्ति मिलेगी जब तुकाराम ने वहाँ खुदाई की, तो उन्हें सच में वहाँ मूर्ति मिली। अब तो संत तुकाराम भक्ति में पूरी तरह से ही लीन हो गए। भक्ति में डूब कर इन्होंने लगभग 7000 से भी अधिक अभंग पद लिखे। परंतु धर्मशास्त्रियों एवं कर्मकांडियों को यह मंजूर नहीं था क्योंकि संस्कृत में लिखा जाने वाला धर्मशास्त्र अब लोक भाषा में लिखा और गाया जा रहा था। "मराठी में लिखे अभंगों का ब्राह्मणों द्वारा विरोध किए जाने पर संत तुकाराम ने अभंगों की पोथी इंद्रायणी नदी में प्रवाहित कर दी। उसके बाद चौदह दिनों तक इस नदी के तट पर बैठे साधना करते रहे। कहते हैं कि चौदह वह पोथी पुनः ही वापस मिल गई।"[3]

संत तुकाराम के स्वप्न में उनसे पूर्व हुए प्रसिद्ध संत बाबा चैतन्य तो कभी स्वयं भगवान विट्ठल आकर उन्हें लोगों को मार्गदर्शन के लिए प्रेरित करते। उन्हें अंधकार से निकाल कर भक्ति के लिए प्रेरित करने को कहते एक बार, तुकाराम से पूर्व हुए भक्त नामदेव जी स्वप्न में आकर अपनी इच्छा प्रकट करते हैं कि उनकी इच्छा शतकोटि अभंग लिखने की थी, परंतु वह ये नहीं कर सके, इसलिए इस अधूरे कार्य को तुम पुरा करो। उन्होंने संत तुकाराम को आशीर्वाद दिया कि वह खूब अभंग लिखें, जो जनसाधारण के लिए हो जिससे उनके मन में ईश्वर-भक्ति का प्रसार हो। तुकाराम के इस कार्य में उनके बचपन के एक मित्र ने भी सहयोग दिया। इनका नाम संता जी जगानेडे था।

तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई लिखती है - *"संतकृपा झाली। इमारतफला आली। ज्ञानदेवें रचिला पाया। उभारिलें देवालया। नाम तयाचा किंकर। तेणे रचिलें तें आवार। जनार्दन एकनाथ। खाब दिला भागवत। 'तुका' झालासे कलस। भजन करा सावकाश।"*[4] यानी संतों की कृपा से ही 'वारकरी' संप्रदाय का यह मंदिर बना। जिसकी नींव संत ज्ञानेश्वर और नामदेव ने रखी और पत्थर सी उसे मजबूती दी एकनाथ ने, 'भागवत' रूपी स्तंभ को आधार दिया तुकाराम ने, इस मंदिर का कलश बनकर इस संप्रदाय को पूर्णता प्रदान की। इस भजन में तुकाराम की महत्ता मंदिर के कलश के रूप में स्थापित की गई है। उन्हें 'वारकरी संप्रदाय' में संत शिरोमणि कहा जाता है।

अपने अभंग के माध्यम से संत तुकाराम ने समाज में एक बड़ा परिवर्तन किया। उस समय के लोग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मौलिक आवश्यकताओं से भी वंचित होकर जीवन-यापन कर रहे थे। उन्होंने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण और अभंगों से लोगों में चेतना जगाई। संत तुकाराम अपने संघर्षों के साथ मानवतावादी कार्यों में सदैव लगे रहे। महाराष्ट्र की संत परंपरा के संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि - "संत शब्द का प्रयोग किसी भी समय विशेष रूप से केवल उन भक्तों के लिए होने लगा था जो विट्ठल या वारकरी संप्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ व तुकाराम जैसे भक्तों के नाम लिए जाते हैं जो सभी महाराष्ट्र प्रांत से संबंध रखते थे।"[5]

गृहस्थ जीवन के साथ-साथ भक्ति और साधना के बारे में हमें मध्यकालीन धर्म ग्रंथों में अनेक प्रयोग या उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिससे समाज को महान संत या व्यक्ति मिले। संत तुकाराम भी इस विरोधाभास के उदाहरण हैं। जहाँ संत तुकाराम का हृदय दूसरे की पीड़ा देखकर दुखी और परेशान हो जाता था वहीं तुकाराम अपनी स्त्री और पुत्रों के दुख से दुर्लक्ष्य कैसे हो उठे, जहाँ तो एक ओर वह अपने शत्रुओं को भी जवाब देना उचित नहीं समझते थे, वहीं दूसरी ओर अपने अभंगों में ग्रामीण और अश्लील शब्दों से गालियाँ दे सकते हैं।

इन सब प्रश्नों का एक ही जवाब है - उनका स्वभाव विचार-प्रधान नहीं था। बल्कि भावना प्रधान था।

एक अभंग में वे स्वयं कहते हैं कि -- "बहुत अच्छा हुआ कि दीवाला निकल गया। बहुत अच्छा हुआ कि दुर्भिक्ष के कारण इतना दुख हुआ। बड़ा भला हुआ कि स्त्री कर्कश स्वभाव की मिली। भला हुआ कि लोगों में फजीहत हुई। बड़ा अच्छा हुआ कि संसार में अपमान हुआ। अच्छा हुआ कि द्रव्य पशु सबका नाश हुआ।"[6] क्योंकि इन सबके कारण ही वे भगवान विट्ठल की भक्ति में पूरी तरह से लीन हो सके। इस संदर्भ में आचार्य श्रीराम शर्मा कहते हैं "सांसारिक और आध्यात्मिक कर्तव्यों का इस उत्तमता के साथ समन्वय करने से ही वे महान संत बने।"[7]

जाति एवं अस्पृश्यता का विरोध -- तुकाराम शूद्र जाति से थे। उन्होंने अस्पृश्यता के दंश को झेला था। उनका मानना है कि इस संपूर्ण संसार को स्वयं जब भगवान विष्णु ने बनाया तो कोई इंसान अस्पृश्य कैसे हो सकता है ! यह पूरी तरह से अवैज्ञानिक एवं मानवता के विरुद्ध है। तुकाराम कहते हैं कि सभी का ब्रह्म एक है-- *"ब्राह्मणाचे ब्रह्म ते सोवलें। अणि शूद्राचें ब्रह्म ते ओवलें। ऐसें बेगलें आगलें तेथें असेचि ना।। उच्च ब्रह्म तें रायासी। नीच ब्रह्म ते परिवरारासी। ऐसा भेद तयापासी। मुळीच नाहीं।"*[8] यानी कि ब्राह्मण का ब्रह्म पवित्र होता है और शूद्र का ब्रह्म अपवित्र, ऐसा भेदभाव ब्रह्म के बारे में नहीं किया जा सकता है। राजा और प्रजा का ब्रह्म भी ऊँच-नीच नहीं हो सकता है। जाति और वर्ण के नाम पर किए गए कोई भी भेदभाव अमान्य हैं।

अभंग-रचना : तुकाराम की रचना लगभग अभंग छंदों में लिखी हुई है। उन्होंने लगभग 7000 से भी अधिक अभंग लिखे। संस्कृत छंद में जिस प्रकार व्याकरण के नियम मात्रा, लघु-वृत्त, यतिभंग, छंदोभंग आदि होते हैं, वहीं संत तुकाराम के अभंग में "किसी प्रकार के भंग का डर नहीं, वह अभंग। इसे पद्य कहने का कारण केवल यही है कि यह गद्य नहीं, यह गेय है अर्थात इसे गा सकते हैं।"[9] वैसे अभंग में भी कुछ नियम हैं। लेकिन सदैव उसका पालन करना आवश्यक नहीं। तुकाराम ने हिंदी में भी कुछ अभंग लिखे हैं। वैयाकरणिक नियम में अधिक बँधे नहीं होने के कारण ही संत तुकाराम के अभंग जनसाधारण के हृदय पर राज किये।

सत्संग जीवन एवं साधना :- वेदांत शास्त्र में जीवों के चार भेद माने जाते हैं - बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध। *"तपबल रचइ प्रपंच विधाता। तपदल विष्णु सकल जग त्राता। तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेस धरहि महि भारा।।"*[10] यानी जब तक जीव को इस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है कि वह संसार में बँध कर जन्म मृत्यु के चक्कर में फंसा है, वह बद्ध कहलाता है। अक्सर सांसारिक सुखों में रहने वाले जीव को यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता। इन चारों अवस्था से निकलकर जब मनुष्य पूरी तरह मुक्त हो जाता है, तो वह सिद्ध हो जाता है। संत तुकाराम का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्संग करना चाहिए। भगवान विट्ठल की भक्ति से ही मनुष्य अपने जीवन को गरिमा प्रदान कर सकते हैं। संत तुकाराम का सत्संग के संदर्भ में मानना है कि -- *"वरग्याचें भाग्य संत-संग हाचि लाभ। संत कृपेचे हे दीप, करी साधका निष्पाप।।"*[11]

दलित उन्नायक के रूप में : संत साहित्य में रामानंद, कबीर, रविदास की तरह तुकाराम ऐसे ही एक महत्वपूर्ण एवं मजबूत संत हुए हैं जिन्होंने दलितों की भाषा में महाराष्ट्र को जागृति दी। इन्होंने अपने अभंगों द्वारा महाराष्ट्र में आध्यात्मिक प्रचार-प्रसार से पिछड़ों को अपने अधिकार के प्रति जागृत किया। उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने दलित होने का दंश झेला था इसलिए उन्होंने लोगों को इसके प्रति जागरूक किया। इस कारण वे वहाँ पर एक नायक के रूप में उभरे। आज भी महाराष्ट्र में उनके अभंगों को कीर्तन, सत्संग के रूप में जनता गाती है।

गुरु-शिष्य परंपरा : मध्यकालीन भारतीय संत

साहित्य में गुरु-शिष्य परंपरा एक महत्वपूर्ण परंपरा है। जिसमें गुरु के शिष्य अपने गुरु के विचारों को आगे प्रसारित करते रहते हैं। जिस प्रकार संत तुकाराम ने अपने गुरु नामदेव आदि से विचार ग्रहण किया वैसे ही इनके शिष्यों ने भी जिनमें प्रमुख थे -- "संताजी जगनड़े, गंगाराम हबुल, मावाल, शिवला कासार, रामेश्वर भट्ट, संत कवियित्री बहिणाबाई, संत नोलोवा पिंपलनेरकर।"[12] इन लोगों ने महाराष्ट्र ही नहीं पूरे भारत में अपने गुरु के विचारों का प्रचार-प्रसार किया एवं लोगों को उन्हें व्यवहार में उतारने के लिए प्रोत्साहित किया।

संतों का महत्व : तुकाराम के अभंगों में ज्यादातर अभंग संतों और सज्जनों के वर्णन से भरे हैं। इन्होंने अपने जीवन में दुर्जनों को काफी झेला था। अपमान का दंश और गौरव नहीं मिलने से ही तुकाराम के जीवन की दिशा बदल गई। उन्होंने भगवत भक्ति को ही श्रेष्ठ माना। "जिनका चरित्र ईश्वर की ओर ही लगा हो, श्री हरि स्मरण की अपेक्षा जो पृथ्वी का राज्य ही नहीं इंद्र का पद भी तुच्छ मानते हों।"[13] ऐसे संत तुकाराम का मानना है कि शरीर, वाणी तथा मन तीनों परमेश्वर - परायण होने से ही व्यक्ति सिद्ध हो पाता है।

संत तुकाराम की ईश्वर भक्ति : उनकी भक्ति सगुण भक्ति थी। इन्होंने सत्य स्वरूप ईश्वर का यथार्थ भेद जान लिया था। "तुकाराम जी के मत से सारा संसार तीन रूपों में विभक्त है। जड़सृष्टि, चैतन्ययुक्त जीव और ईश्वर।"[14] यह जो सृष्टि है वह ईश्वर की बनाई है, उनकी इच्छा से निर्मित हुई है, ईश्वर ही जड़ सृष्टि एवं सचेतन जीवन का अंतर्यामी अंतर संचालक है। वह कहते हैं कि ईश्वर के गुण का वर्णन और बड़ाई कर पाना संभव नहीं। "यह नित्य है, जीवों तथा जड़-सृष्टि से ओत-प्रोत है। सभी का अंतर्यामी है और शुद्ध आनंद स्वरूप है। ज्ञान, ऐश्वर्य इत्यादि सद्गुणों से युक्त है। वही सृष्टि का निर्माण करता है, वही इसका पालन करता है तथा अंत में वही इसका संहार भी करता है।"[15]

संत तुकाराम का सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए समर्पित रहा। भक्ति आंदोलन को उन्होंने अपने अभंगों से मजबूत कर आम जन को अपने अधिकार के प्रति जागरूक किया। जाति और वर्ण व्यवस्था के वे खिलाफ थे, उन्होंने अपने सात हजार से भी अधिक अभंगों से ब्राह्मणवाद की चूलें हिला दीं। आम जन को यह बताया कि जाति और अस्पृश्यता मानव-जाति के लिए हर प्रकार से गलत है। ईश्वर ने भी जब इंसान बनाकर उनमें भेदभाव नहीं किया तो हम कौन होते हैं भेदभाव करने वाले। मनुष्यता से बढ़कर कोई धर्म नहीं।

संदर्भ

1. दिवेकर, हरि रामचन्द्र (1950) संत तुकाराम, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, पृ.सं.-197। **2.** जैन, जवाहिर लाल (1958) संत तुकाराम की जीवनी, राजस्थान खादी संघ, जयपुर, पृ.सं.-2। **3.** गोपाल, कृष्ण, भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं. 323। **4.** तुकाराम-अभंगगाथा, द्वितीय खंड, अभंग-2766, पृ.सं.-1112। **5.** चतुर्वेदी, परशुराम (2014) : उत्तरी भारत की संत परंपरा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ.-16। **6.** दिवेकर, हरि रामचन्द्र (1950) संत तुकाराम, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, पृ.-55। **7.** आचार्य, पंडित श्रीराम शर्मा : सेवा और सहिष्णुता के उपासक - संत तुकाराम, गायत्री परिवार। **8.** श्री दासबोध - सातवाँ दशक, ब्रह्मनिरूपण -24, पृ.सं.-179-80। **9.** दिवेकर, हरि रामचन्द्र (1950) संत तुकाराम, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, पृ.सं.-113। **10.** वही, पृ.सं.-56। **11.** आचार्य, पंडित श्रीराम शर्मा : सेवा और सहिष्णुता के उपासक- संत तुकाराम, गायत्री परिवार, पृ.सं.-20। **12.** जैन, जवाहिर लाल (1958) संत तुकाराम की जीवनी, राजस्थान खादी संघ, जयपुर, पृ.सं.13। **13.** दिवेकर, हिर रामचन्द्र (1950) संत तुकाराम, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, पृ.सं.185। **14.** वही, पृ.सं.-197। **15.** वही, पृ.सं.-197।

Siddha Town, Av-110,
Beraberi, Rajarhat,
Kolkata - 700 136
Mob. : 700 4981616

मिथिला की संत परम्परा

डॉ. अहिल्या मिश्र

अखिल भारत वर्ष की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक परम्परा अति प्राचीन एवं विलक्षण है। इसकी व्यापकता महासागर की तरह है। समय-समय पर आनेवाली सामाजिक विकृतियों एवं चुनौतियों के प्रति देश की दार्शनिकता और आध्यात्मिक परम्परा, भक्ति का सहारा लेकर सामना करती रही है। विगत 1500 वर्षों का भक्ति आन्दोलन एक ओर भक्ति साहित्य का प्रणेता है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति और समाज में हुए जनांदोलनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण देशव्यापी आन्दोलन है। इस आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत को एक साथ प्रभावित किया। देश के प्रत्येक प्रान्त में सभी भाषाओं और जातियों में अनेक संत हुए। इन संतों की भाषा अलग-अलग थी, उनकी पूजा एवं साधना पद्धति में भी विभिन्नताएं थीं किन्तु संतों-भक्तों एवं उनके अनुयायियों के बीच एक सामान्य बात थी - भक्ति। यह भक्ति ही एक मात्र थी जो सबों को आपस में जोड़े रही। यही समाज में जागरण और उत्थान की प्रणेता बनी रही, नवचेतना लाते हुए मनुष्य के जीवन के उदात्त गुणों का आह्वान भी करती रही। इस भक्ति ने पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के साथ हजारों वर्षों से हमारे देश को एक बनाए रखा है। भक्ति मानव-मानव के बीच सभी भेदों को अस्वीकार कर अभेद की सृष्टि करती है। सभी प्रकार की सामाजिक बुराइयों को नष्ट करती है। समाज में सामाजिक समरसता का निर्माण करती है।

भारत देश की पवित्र भूमि में समय-समय पर संतों का आविर्भाव होता रहा है, इसी तरह बिहार के मिथिला अंचल में भी हुआ। मिथिला की भूमि तो विदेह यानी जनक राजऋषि के कारण अति प्रसिद्ध है। विदेह की संज्ञा से ही संत के सर्वगुणों का भान होता है। वेद पुराण में वर्णित कई संत ऋषि मिथिला की भूमि को पवित्र करते रहे हैं। सती की कथा से लेकर गौतम बुद्ध यानी राजकुमार सिद्धार्थ एवं मिथिला के वैशाली नगर में जन्मे भगवान महावीर जैसे संत इसी भूमि की उपज हैं। इन महापुरुषों के साथ कवि विद्यापति का नाम लेना भी अपना औचित्य रखता है।

इन्होंने गंगा स्तुति की *इंपोनेमौत अबेर रात* और गंगा नदी माता अपनी सीमा तोड़कर इन तक पहुँची और माता गंगा का स्पर्श कर इन्होंने प्राण त्यागे।

मिथिला की इस धरा पर बड़ी संख्या में प्राचीन ऋषियों ने गंगा तट पर साधना करते हुए परम चेतना को प्राप्त किया। इनमें गौतम कणाद, कालीदास, याज्ञवल्क्य, अयाची, मंडन

मिश्र, अहिल्या, गार्गी, मैत्रेयी, भारती, भामती आदि हैं। पिछले दो-तीन शताब्दी में भी कुछ विलक्षण संतों ने बिहार में जन्म लेकर सम्पूर्ण विश्व को आध्यात्मिक और योग का ज्ञान प्रदान किया है, जिसमें सरभंग सम्प्रदाय के संत धरनीदास, संत दरिया साहब, परमहंस लक्ष्मीनाथ गोसाईं, बाबा देवी साहब, महर्षि मेहींदास परमहंस आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं।

सरभंग सम्प्रदाय - इसे अघोर और औघड़ पंथ की ही एक शाखा माना जाता है। इसका प्रसार अधिकतर चम्पारण, सारण, मुजफ्फरपुर आदि क्षेत्र में है। सरभंग का शाब्दिक अर्थ समदर्शिता है। इसमें जाति, सगुण-निर्गुण, पंथ और सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जाता है इसकी स्थापना एक ऋषि सरभंग ने की थी जिनका जिक्र वाल्मीकि रामायण और तुसलीदासकृत रामचरितमानस में भी मिलता है। सरभंग ऋषि भीलनी शबरी के गुरु थे। उन्होंने अपना शरीर त्याग करते समय उसकी कुटिया में श्रीराम के आगमन की भविष्यवाणी की थी। इस पंथ के दो भाग हैं -- (1) निरबानी परम्परा, जिसमें स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है तथा (2) घरबारी परम्परा जिसमें स्त्रियों को दीक्षित होने की इजाजत है। इस पंथ का मानना है कि साधक गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी ईश्वर की भक्ति कर सकते हैं। इस पंथ में बड़ी संख्या में दूसरे धर्म के लोगों ने भी दीक्षा ली। सरभंग पंथ के लोग सगुण और निर्गुण दोनों की उपासना करते हैं। निर्गुण को कुछ लोग 'अलख या निरालम्ब' भी कहते हैं।

संत धरणीदास - संत धरणीदास बिहार की धरती पर जन्मे बहुत उच्चकोटि के संत हुए हैं, वे रामानन्दी सम्प्रदाय के संत और भोजपुरी कवि थे जिन्होंने भोजपुरी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके अनुयायियों को धरणीदासी कहा जाता है, जो गले में माला पहनते हैं, भजन गाते हैं और शाकाहारी होते हैं।

उनका जन्म 1646 ई. में बिहार में छपरा के पास माँझी गाँव के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम परशुराम और माता का नाम बीरमा था और उनके बचपन का नाम गैबी था। उनके पूर्वज माँझी जागीर में दीवान के पद पर कार्यरत थे। संत बनने से पहले उन्होंने राज्य की भी सेवा की थी। उनके संत बनने के बारे में लोकप्रिय मिथक यह है कि एक बार अपने काम के दौरान उन्होंने कागजों पर एक बर्तन से पानी डाल दिया। ऐसा करने का कारण पूछने पर उन्होंने जवाब दिया "आरती के दौरान भगवान जगन्नाथ जल गए थे और उन्होंने आग बुझाने के लिए ऐसा किया था।" जब मकान मालिक ने पूछताछ की तो कहानी सच निकली। उसके बाद वह एक संत के रूप में प्रसिद्ध हुए। 1657 ई. में वे रामानन्द पंथ के अनुयायी बन गये, जिन दो घटनाओं के कारण उन्हें सांसारिक जीवन छोड़कर भिक्षु बनना पड़ा, उनमें से एक उनके पिता की मृत्यु थी, और दूसरी मुगल सम्राट शाहजहाँ की मृत्यु। उन्होंने चरणदास नामक संत से दीक्षा ली और फिर विनोदानन्द के शिष्य बन गए। सदानन्द और करुणानिधान उनके दो उल्लेखनीय शिष्य थे।

अपने जीवनकाल में उन्होंने एकमा के पास पारस मठ, भटनी के पास सहनम मठ जैसे कई मठों की स्थापना की, जहाँ हर साल उनसे और उनके अनुयायियों सदानन्द और शिवानन्द से जुड़ा एक मेला लगता है। उन्होंने माँझी में भी एक मठ की स्थापना की। उनके धार्मिक विचार मूर्तिपूजा और अन्धविश्वास के विरुद्ध थे। उन्होंने तीन किताबें लिखीं (1) प्रेम प्रकाश (प्रेम प्रगास) (2) शब्द-प्रकाश, जो क्रमशः भोजपुरी और ब्रज भाषा में थीं और (3) आलिफ, जो फारसी में थी। 'शब्द प्रगास' का प्रकाशन 1887 में छपरा के नासिक प्रेस से हुआ था। 'धरणीदास की वाणी' नामक उनकी रचनाओं का एक संग्रह भी 1911 ई. में मात्र 47 पृष्ठों की पुस्तिका के रूप में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था।

परम चेतना सम्पन्न इस संत ने समाज से ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाकर समरसता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनकी रचनाएँ 'प्रेम प्रकाश' और 'शब्द प्रकाश' आध्यात्मिक साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। उनकी अच्छी शिक्षा हुई थी और राजा माँझी के दरबार में उन्हें नौकरी भी मिली थी। लेकिन उनके अन्दर आध्यात्मिक चेतना बहुत कम उम्र से ही जागी हुई थी, लिहाजा उन्होंने नौकरी छोड़कर अपना जीवन ईश्वर की भक्ति, मानव कल्याण और समाज सेवा को समर्पित कर दिया। इन्होंने धरनी पंथ की स्थापना की, जिसने समाज की बुराइयों को दूर करने की दिशा में बहुत अच्छा काम किया।

संत दरिया साहब - यह एक महान संत थे। इन्होंने दरिया पंथ की स्थापना की। इनकी रचना 'दरिया ग्रंथावली' बहुत लोकप्रिय है। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने के बावजूद उन्होंने कभी जातिगत भेद-भाव को नहीं माना। उनके अधिकतर अनुयायी पिछड़ी कही जाने वाली जातियों के थे। वे कहते थे, "सभी प्राणियों में ईश्वर की ज्योति है। वह गुणों से अतीत, अजर और अमर है।" संत दरिया साहब ने शब्द की साधना पर जोर दिया। उन्होंने कुण्डलिनी जागरण की विधियाँ बतायीं और नाम महिमा पर बहुत जोर दिया। उन्होंने बाहरी आचारों और पाखंडों का खंडन किया। उनके अनुसार राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु सभी में वही एक ज्योति है।

परमहंस लक्ष्मीनाथ गोसाई (1787-1872) **-** ये बिहार के मिथिला क्षेत्र के योगी और आध्यात्मिक कवि थे जिन्हें 'बाबाजी' के नाम से जाना जाता था। इनका जन्म सहरसा जिले के परसरमा गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने बाल्यावस्था में ही योग साधना और वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन कर लिया था।वे विवाहोपरान्त ही गुरु की खोज में जंगल की ओर निकल पड़े। ये भारत और नेपाल के बहुत से मठ मन्दिरों में घूमते रहे। अन्ततः तराई क्षेत्र के गुरु लम्बानाथ स्वामी के शिष्य बन गये जो स्वयं को गुरु गोरखनाथ का शिष्य बताते थे। उन्होंने मैथिली और हिन्दी में राधा-कृष्ण और शिव-पार्वती सम्बन्धित बहुत-से भक्ति पदों (भजनों) की रचनाएं कीं। इनके द्वारा रचित बदुत-से पदों को क्रिश्चियन जॉन नामक एक अंग्रेज ने प्रकाशित करवाया था। इनके बहुत-से भजनों के एक संग्रह को 'भजनावली' कहा जाता है। योग और तंत्र-साधना की शिक्षा ग्रहण कर परमहंस लक्ष्मीनाथ गोसाई (बाबाजी) सबसे पहले दरभंगा लौटे। तत्पश्चात् वे एक बार बनगाँव गये जहाँ ग्रामीणओं ने उनकी योग प्रसिद्धि तथा एक ख्यातिलब्ध अखाड़े के मल्लयोद्धा के रूप में उनका भव्य स्वागत किया। लोगों के इस आदार-सम्मान का प्रतिफल यह हुआ कि बाबाजी ने अपने जीवन का शेष भाग बनगाँव में ही कुटिया बनाकर रहने का निर्णय लिया। कारी झा नामक एक ग्रामीण ने दूध के लिए बाबाजी को एक गाय भेंट की थी। ऐसा कहा जाता है कि बाबा ने भी ग्रामीणों के लिए समय-समय पर अनेक भलाई के कार्य किए। चूँकि इन्हें बहुत-सी दैवीय शक्तियाँ प्राप्त थीं, अतः इनके गाँव परसरमा और बनगाँव में इनका मन्दिर बनाकर लोग इन्हें देवता की तरह पूजते हैं। वर्तमान समय में इनके असंख्य अनुयायी इनकी शिक्षा, उपदेश और भजनों के प्रचार-प्रसार में लगे हैं।

बाबा देवी साहब (1841-1919) **-** बाबा देवी साहब संत धार्मिक आन्दोलन के नेताओं में से एक थे, जिन्होंने इसे पूरे उत्तर भारत और वर्तमान पाकिस्तान में लोकप्रिय बनाया।

महर्षि महदास (मेही) परमहंस (1885-1969) **-** महर्षी मेही परमहंस जी महाराज एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु थे जिनका जन्म भारत के बिहार राज्य में हुआ था। उन्हें हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रवचन और सत्य की खोज के उनके योगदान के लिए जाना जाता है। उनका जन्म एक ग्रामीण परिवार में सात बच्चों में सबसे छोटे के रूप में हुआ था। बालक मेही का प्रारम्भिक जीवन

चुनौतियों और अनुभवों से भरा था। जब वह बहुत छोटे थे, तो उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की तलाश में अपने परिवार और अपनी मातृभूमि को छोड़ दिया। जीवन की वास्तविकता को जानने और सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्होंने पूरे भारत की यात्रा की। महर्षि मेही परमहंस संतमत की परम्परा के संत हैं उन्हें आमतौर पर 'गुरुमहाराज' के नाम से जाना जाता है, वे 'अखिल भारतीय संतमत सत्संग' के गुरु थे। उन्होंने वेदों, मुख्य उपनिषदों, गीता, बाइबिल, बौद्ध धर्म के विभिन्न सूत्रों, कुरान, संत साहित्य का अध्ययन किया और इससे यह आकलन किया कि इन सभी में निहित शिक्षा एक ही है। उन्होंने 'मोक्ष' प्राप्त करने का एक और सबसे आसान तरीका बताया - 'सत्संग' और 'ध्यान'। मेही उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद के बाबा देवी साहब के शिष्य थे।

महर्षि मेही का जन्म 28 अप्रैल 1885 को सहरसा जिले के खोखसी श्याम गाँव में उनके नाना के घर पर हुआ था। उनके पिता का घर पूर्णिया जिले के बनमनखी के समीप शिकली गढ़ धरहरा में था। वहाँ एक गुफा थी जिसमें वे ध्यान के लिये जाया करते थे। उनके पिता का नाम बाबूजन लाल दास था। उनके द्वारा अपनाए गए नाम मेही का अर्थ है महीन, दुबला-पतला और तेज या सूक्ष्म। लगभग दो दशक बाद जब रामानुग्रह लाल दास अपने गुरु बाबा देवी साहब के सम्पर्क में आये तो बाबा उनकी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि से प्रभावित होकर उन्हें मेही कहने लगे। जब वह आठ साल के हुए तो उन्हें गाँव के स्कूल में भर्ती कराया गया। इस विद्यालय में स्थानीय कैथी लिपि में शिक्षा दी जाती थी। घर पर उन्होंने अपने पिता को कवि संत गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित महान महाकाव्य रामचरितमानस का नियमित पाठ करते देखा। उनके पिता अक्सर इसे सुनाते समय बहुत भावुक हो जाते थे और कई बार तो फूट-फूट कर रोने लगते थे। इससे मेही को इस महाकाव्य को सामग्री जानने की उत्सुकता हुई। चूँकि महाकाव्य देवनागरी लिपि में छपा था इसलिए पहले तो वह इसे पढ़ नहीं सके। उन्होंने देवनागरी के अक्षरों को कैथी के अक्षरों से जोड़ने का प्रयास किया और फिर जल्द ही वे देवनागरी लिपि भी सीख गए। रामचरितमानस ने उनके मन पर गहरा प्रभाव डाला और इसकी कई चौपाइयों और दोहे उन्हें कंठस्थ हो गये। उन्होंने माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी, उर्दू और फारसी भाषाएँ भी सीखीं।

अपने बचपन के दिनों में महर्षि मेही परमहंस शिव के उपासक थे, लेकिन उनकी पूजा करने की विधि अद्वितीय थी। वे जमीन में एक कील गाड़ देते थे उस पर जल चढ़ाते थे और फिर उसके सामने ध्यान में बैठ जाते थे। उन्हें रामचरितमानस के अलावा सुखसागर और महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन का भी गहरा शौक हो गया। स्कूली शिक्षा और औपचारिक पढ़ाई के प्रति उनकी अरुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गई और 04 जुलाई, 1904 को अपने चरम पर पहुँच गई। दसवीं कक्षा की अर्द्धवार्षिक परीक्षाएँ चल रही थीं और दूसरा पेपर था अंग्रेजी का। इसका पहला प्रश्न था स्मृति से बिल्डर्स कविता उद्धृत करें और इसे अपनी अंग्रेजी में समझाएँ, प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने पहली चार पंक्तियाँ उद्धृत की और इन्हें समझाना शुरू किया। कविता की पंक्तियाँ थीं -- "For the structure that we rise, time is with material's filed, our todays and yesterdays, are the blocks with whic we build." इन पंक्तियों के केन्द्रीय सन्देश की व्याख्या करते समय बालक मेही त्याग की भावना के इतने प्रबल ज्वार से अभिभूत हो गये कि हमेशा के लिए गृहस्थ जीवन को अलविदा कहने का फैसला कर लिया।

संतमत में दीक्षित होने और पूरी तरह से सन्तुष्ट होने के बाद, मेही अपने दोस्तों की सलाह के अनुसार, वहाँ लौट आए जहाँ उनके पिता (जो अपने

बेटे को घर वापस देखकर खुश हो गए थे) रहते थे। 1909 की विजयादशमी के शुभ दिन पर ही उन्हें अपने गुरु की पहली झलक मिली थी एक सच्चे गुरु को एक सच्चा शिष्य और उत्तराधिकारी मिल गया था। जिससे उन्हें अपने वास्तविक स्वरूप का एहसास हुआ। 11 नवम्बर, 1944 को महर्षि मेही परमहंस जी महाराज ने सद्‌गुरु बाबा देवी साहब से दीक्षा ली और उन्हें आध्यात्मिक नाम 'मेही' दिया गया। 8 जून, 1986 को उन्होंने अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया, किन्तु वे अपने पीछे अपनी शिक्षाओं और दर्शन की एक महान विरासत छोड़ गये हैं।

इनके द्वारा प्रतिपादित संतमत सिद्धान्त इस प्रकार हैं - **1.** जो परम तत्त्व आदि-अन्त रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर सर्वाधार मानना चाहिए। **2.** जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है। **3.** प्रकृति आदि अन्त सहित है और सृजित है। **4.** मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है जो सब दुःखों का कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है। **5.** सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है। **6.** झूठ बोलना, नशा, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए। **7.** सतगुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

महर्षि मेही परमहंस द्वारा लिखित या उनके बारे में पुस्तकों की सूची इस प्रकार है :- (1) मोक्ष दर्शन (मुक्ति का दर्शन), प्रोफेसर वीना हॉवर्ड, ओरेगन विश्वविद्यालय यूजीन द्वारा हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवादित (2) अंग्रेजी में महर्षि मेही की जीवनी का अंश (3) संतमत सिद्धान्त और गुरु-कीर्तन (4) सत्संग योग (5) रामचरितमानस सार सातिक (6) विनय पत्रिका सार व्यंग्य-7 भावार्थ - सहित घात रामायण पदावली (8) मेही पदावली; (9) सत्संग सुधा, भाग-1, (10) सत्संग सुधा, भाग-2, (11) श्री गीता योग प्रकाश, (12) वेद दर्शन योग, (13) ईश्वर स्वरूप और उसकी प्राप्ति, (14) संतवाणी सातिक (15) ज्ञान योग युक्त ईश्वर भक्ति आदि।

रामायण-भक्त मैथिली कवयित्री चंदा झा - इन्होंने मैथिली भाषा में रामायण की रचना की। इसका मुख्य आधार 'अध्यात्म रामायण और श्रीरामचरितमानस हैं। इन्होंने भक्तिमय सात्विक और सदाचारी जीवन का आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत किया। उनके द्वारा रचित मैथिली भाषा की रामायण में बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। यह रागों में होने के कारण गाने में आसान है। इसी कारण इनकी यह रामायण इस प्रान्त के लोककंठ में बस गयी। इस रामायण ने समाज में समरसता लाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

ई-54 मधुरा नगर
हैदराबाद (तेलंगाना)-500038
मो. 7981640328

●

भीड़ का हिस्सा नहीं,
भीड़ की वजह बनो।

आपके कर्म ही आपकी
पहचान हैं, वरना एक
नाम के हजारों इंसान हैं।

कुँवर नारायण कृत 'आत्मजयी': एक पुनर्मूल्यांकन

प्रो. अर्चना जैन

कविवर कुँवरनारायण अपने समकालीन कवियों में मूर्धन्य कवि हैं और साथ ही अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' के प्रतिष्ठित कवि भी। इनका जन्म 19 सितम्बर 1927 ई. में फैजाबाद में हुआ। ये पहले विज्ञान के छात्र रहे किन्तु बाद में लखनऊ युनिवर्सिटी से अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान शिक्षा-पद्धति कभी आपको नहीं रुची। यायावरी प्रकृति होने से आपने देश-विदेश की यात्रा की। आप लिखते हैं- "शिक्षा की जो पद्धति स्कूल, कॉलेज या विश्वविद्यालय में रही, उससे मन सदा विद्रोह करता रहा, इसलिए शायद स्कूली अर्थ में कभी भी उत्कृष्ट विद्यार्थी नहीं हो सका। आरंभ से पढ़ने और घूमने का बहुत शौक रहा और दोनों के लिए पर्याप्त अवसर भी मिलता रहा। सन् 1955 में चेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, रूस और चीन का भ्रमण किया-- यह कई तरह से महत्त्वपूर्ण रहा।" सन् 1947 में कुँवरनारायण अंग्रेजी में कविताएँ लिखा करते थे किन्तु शीघ्र ही वे अपनी मिट्टी से जुड़ गए और उनकी प्रवृत्ति हिन्दी की ओर उन्मुख हो गई और तबसे निरंतर हिन्दी में ही साहित्य-साधना करते आ रहे हैं। एक अरसे तक मोटर का व्यवसाय करते रहे---*'फ़िक्रे दुनिया में सर खपाता हूँ, मैं कहाँ और से सवाल कहाँ ?'*

कुँवरनारायण ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी कलम के जौहर दिखाए हैं। कविता के अतिरिक्त कहानी, समीक्षा तथा ललित निबन्ध के क्षेत्र में भी आपका योगदान उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त फिल्म, नाटक, ललित कलाओं आदि पर भी आपके चिन्तनीय लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। इन्होंने कई विदेशी कवियों की रचनाओं को भी अनूदित किया है। ये सन् 1956 से 1961 तक 'युग चेतना' के सम्पादक-मण्डल में सेवा-रत रहे। कुँवरनारायण का समग्र कृतित्व है - **काव्यकृतियां**-- चक्रव्यूह (1956), तीसरा सप्तक (1959), परिवेश : हमतुम (1961), आत्मजयी (1965), अपने सामने (1979)। **कहानियां** : आकारों के आसपास (1979)। **अनुवाद :** यूनानी कवि कवाफी स्पानी एवं कवि बोर्खेस की कविताओं के अनुवाद (1986-87)।

कुँवरनारायण मूलतः (इण्टर तक) विज्ञान के छात्र रहे हैं, अतः वे अपने परिवेशगत जगज्जीवन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने-परखने के हामी हैं। कविता के क्षेत्र में भी आप इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आवश्यक मानते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कवि का

अभिप्राय, "उस सहिष्णु और उदार मनोवृत्ति से है जो जीवन को किसी पूर्वाग्रह से पंगु करके नहीं देखती, बल्कि उसके प्रति एक बहुमुखी सतर्कता बरतती है। जो बुनियादी जिज्ञासा एक वैज्ञानिक को रुढ़ि की उपेक्षा करके भी, यथार्थ की गूढ़ तहों में पैठने के लिए बाध्य करती है, खोज की वही रोमांचकारी प्रवृत्ति कवि को भी अज्ञात के विराट व्यक्तित्व में भटकाती है।...और दोनों ही एक विशेष प्रज्ञा द्वारा विश्वसनीय सत्य तक पहुंचना चाहते हैं।"

'आत्मजयी' और उसकी सृजनात्मक प्रेरण-ा 'आत्मजयी' मूलतः 'कठोपनिषद' पर आधारित प्रबन्धकाव्य है। काव्य-कथा 28 शीर्षकों में विभक्त है जिसमें कवि ने मूल्यों की सैद्धांतिक मीमांसा एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। तमाम प्रसंगों को सांस्कृतिक एवं दार्शनिक स्तर पर उठाते हुए स्वयं कवि ने लिखा है-- 'आत्मजयी में उठायी गई समस्या मुख्यतः एवं विचारशील व्यक्ति की समस्या है-- केवल ऐसे प्राणी की समस्या नहीं जो दैनिक आवश्यकताओं के आगे नहीं सोचता या नहीं सोच पाता। कथानक का नायक नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता है, तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति भर ही उसके लिए पर्याप्त नहीं। उसके अंदर वह बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए केवल सुखी जीना काफी नहीं, सार्थक जीना जरूरी है। यह जिज्ञासा ही उसे साधारण प्राणी से विशिष्ट उन मनुष्यों की कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना, कायिक जीवन को स्वप्न समझा और जिन्होंने ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया, बल्कि उस चरम लक्ष्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया जो उन्हें पाने के योग्य लगा।"

रचनाशीलता चिरंतन जीवन मूल्यों का संधान है। इसके संबंध में कवि इन तथ्यों को स्वीकार करते हुए लिखता है- "नचिकेता की चिंता अमर जीवन की चिंता है। अमर जीवन से तात्पर्य उन अमर जीवन-मूल्यों से है जो व्यक्ति-जगत का अतिक्रमण करके सार्वकालिक एवं सार्वजनिन बन जाते हैं।" कवि द्वारा प्रतिपाद्य स्थितियों में वर्तमान युग में मनुष्य की निराशा को घूंट-घूंट पीता और संत्रास के तिमिर से जूझता हुआ कथा-नायक नचिकेता विसंगतियों की घुटन में निरंतर संघर्षरत रहता है। वर्तमान संदर्भों में थका देनेवाली उसकी जिजीविषा उसके लिए पाथेय का काम करती है।

'आत्मजयी' का कथानक एवं उसमें कवि की मौलिक उद्भावनाएँ- 'आत्मजयी' का मूल आधार 'कठोपनिषद' की कथा है। इसलिए 'कठोपनिषद' में वर्णित मूल कथा का हम संक्षेप में परिचय प्राप्त करेंगे :

यज्ञ-फल के इच्छुक वाजश्रवा उद्दालक ने विश्वजित यज्ञ किया। निचिकेता उनका पुत्र था । उद्दालक ने उत्तम गायों को तो पुत्र-धन के रूप में अपने पास सुरक्षित रखा और अधम गायों का दान कर दिया। नचिकेता के लिए पिता की यह मनोवृत्ति एवं प्रवृत्ति असह्य हो उठी। उसने सोचा कि 'आत्म-दान' करनेवाले पिता की इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। उसने पिता से कहा- 'आप मुझे किसे देंगे?' उसने यही प्रश्न एकाधिक बार दुहराया। इस पर पिता क्रोधित होकर बोल उठे - 'मृत्यवे त्वां ददाभि।' पिता के इन शब्दों को सत्य प्रमाणित करने के लिए नचिकेता पश्चाताप से संतप्त अपने पिता से अनुमति लेकर यम के द्वार पर जा पहुंचता है। प्रवास से लौटे हुए यम से नचिकेता ने तीन वर देने का अनुरोध किया। नचिकेता ने प्रथम वर मांगते हुए कहा- पिता निश्चिंत, प्रसन्न और क्रोधमुक्त हो जाएं। द्वितीय वर में उसने अमर, निर्जर तथा क्षुधा-तृषा रहित प्रणयात्माओं के निवासभूत स्वर्ग के साधनभूत अग्नि का ज्ञान मांगा और तृतीय वर के रूप में उसने आत्मज्ञान का उपदेश मांगा जिसे पाकर नचिकेता जीवन-मुक्त हो जाये।

'कठोपनिषद' की उक्त कथावस्तु कुछ मौलिक परिवर्तन के साथ इस प्रकार है : वाजश्रवा उद्दालक का पुत्र नचिकेता वैरागी-सा और चिन्तनशील स्वभाव

का है। पिता को यज्ञ-अनुष्ठान में बूढ़ी गायों का दान करते देखकर वह अपने पिता की मान्यताओं के विरोध में उठ खड़ा होता है। धर्म का ऐसा स्वार्थान्ध रूप उसे अग्राह्य ही नहीं, विगर्हणीय भी लगता है। वह खुले स्वर में कह उठता है- "यह धर्म नहीं, धर्म-सामग्री का प्रदर्शन है।" वह जिन परिस्थितियों में जीवित है, उन्हें समझना चाहता है। वह पिता से कहता है-

तुम जिन वस्तुओं को प्रिय या अप्रिय कहते
यदि केवल उनमें हूं,
तो मुझे भी त्यागकर,
मुझसे श्रेष्ठतर कुछ मांगो।

यह सुनकर वाजश्रवा का क्रोध भड़क उठता है और उनके मुख से एक वाक्य वज्रपात की तरह बरस पड़ता है--

'मृत्यवे त्वां ददाभि'-- अकस्मात् वज्रवाक्य !
क्रुद्ध वाजश्रवा के ये क्रोध से धधकते शब्द
नचिकेता के कोमल अन्तस् पर
छाप-सी झुलस आयी-- 'मृत्यवे त्वां ददाभि'।

निराशा की गहन तिमिश्रा में डूबा नचिकेता आत्महत्या करने का विचार करता है और स्वयं को पानी में डुबो देता है। परन्तु प्राणान्त होने से पूर्व ही उसे पानी से बाहर निकाल लिया जाता है। इसी अचेतावस्था में उसका यमराज से साक्षात्कार होता है। यम उससे पुछते हैं-- *"बोल नचिकेता तुझे क्या चाहिए? नचिकेता की जिज्ञासाएँ अनन्त हैं... उनके अनुसार....*

सुख, सुविधा, विश्राम.......नहीं
कुछ और ध्येय है।
कभी-कभी लगता
यह जीवन अपरिमेय है,
समा नहीं पाता जो दैहिक स्वप्न-परिधि में।
नचिकेता की मांग है--
मिल सके अगर तो
एक दृष्टि चाहिए मुझे-
जीवन बच सके
अंधेरा हो जाने से -- बस !

नचिकेता की आत्मा की इस प्यास को देखकर यमराज उसे आत्मज्ञान का उपदेश देकर मृत्यु-मुख से मुक्त करते हैं। अचेतावस्था से जागकर नचिकेता वस्तुतः 'आत्मजयी' बनकर उठ खड़ा होता है।

'कठोपनिषद' के अतिरिक्त 'तैत्तरीय ब्राह्मण' और 'महाभारत' में भी नचिकेता का अख्यान मिलता है। 'तैत्तरीय ब्राह्मण' और 'कठोपनिषद्' की कथा में अन्तर है। 'तैत्तरीय ब्राह्मण' में नचिकेता उग्र है। वह यमराज के प्रति भी उग्र है, जबकि कठोपनिषद् में उसकी वाणी में संयम एवं मार्दव तथा शिष्टता परिलक्षित होती है। 'महाभारत' के अनुशासन पर्व के 91 वें अध्याय में नचिकेनोपाख्यान आया है। युधिष्ठिर शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म से गोदान के फल का वर्णन करने के लिए अनुरोध करते हैं। परिणामस्वरूप भीष्म नचिकेता की कथा सुनाते हैं-- "ऋषि उद्दालक यज्ञ-संलग्न हैं। वे नचिकेता से अपनी सेवा करने को कहते हैं। नियम समाप्त होने पर ऋषि नचिकेता से कहते हैं कि आचमन करने में संलग्न एवं स्वाध्यायरत होने के कारण मैं नदी-तट पर इध्य, दर्भ और कलश भूल आया हूँ। तुम तत्काल इन वस्तुओं को ले आओ। नचिकेता ने नदी-तट पर पहुंच कर देखा कि उक्त सारी वस्तुएं नदी के प्रवाह में बह गई हैं। लौटकर नचिकेता निवेदन करता है कि पिता ! वे चीजें तट पर तो नहीं हैं। इस पर भूख-प्यास और थकान से व्यग्र मुनि उद्दालक ने पुत्र को शाप दे दिया कि 'तुम यम को देखो।' पिता की इस वज्रतुल्य वाणी से मर्माहत होकर नचिकेता 'पिता प्रसन्न हों' ऐसी प्रार्थना करते हुए अचेत होकर घराशायी हो जाता है। पिता अपने कृत्य पर पश्चाताप करते हैं। नचिकेता यम के यहां से लौट आता है। वहां यम उसे यथोचित आसन देकर उसकी पूजा करते हैं। यम कहते हैं-- "हे सौम्य ! तुम मृत नहीं हो। तुम्हारे पिता ने तुमसे केवल यही कहा है कि 'यम को देखो।' तुम्हारे पिता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। तुमने मुझे देख

लिया है। अतः अब तुम वर मांग लो और यहां से लौटकर अपने शोकग्रस्त पिता के पास जाओ।"

स्पष्ट है कि महाभारत और कठोपनिषद के आख्यान में भिन्नता है। कठोपनिषद के पिता का क्रोध सकारण है, जबकि महाभारत के पिता का अकारण। कठोपनिषद में शाप के अनंतर नचिकेता यम के पास जाता है जबकि महाभारत में तत्काल अचेत हो जाता है। कठोपनिषद में नचिकेता ने यमराज की अनुपस्थिति में तीन रातें निराहार रहकर बिताई, फलस्वरूप प्रत्येक रात्रि के लिए एक-एक वर यमराज ने नचिकेता को दिया, जबकि महाभारत की कथा में कहा गया है कि जो तीन रात उपवास करके गोदान करता है, वह पुण्य लोकों को प्राप्त करता है। महाभारत की कथा में नचिकेता ब्रह्मज्ञानी और अमर नहीं होता, जबकि कठोपनिषद में यह ब्रह्मज्ञानी एवं अमर हो जाता है।

मौलिक उद्भावनाएँ- कुँवरनारायण ने उक्त कथा को ही आधार बनाकर अपनी समस्या को बल प्रदान किया है। वैसे कवि ने अपने काव्य में जिस कथारूप को प्रस्तुत किया है वह तो मूल कथा पर ही आधारित है, किन्तु आधुनिक संदर्भ की योजना ने उसमें कुछ परिवर्तन करने पर बाध्य किया है। फिर भी मूल कथा की वस्तुस्थिति में बहुत भिन्नता लक्षित नहीं होती।

वाजश्रवा से मतभेद होने के कारण खिन्न नचिकेता आत्महत्या करने की दृष्टि से अपने को पानी में डुबो देता है किन्तु कवि-प्रतिभा इस बात में है कि उसने नचिकेता को जीवित ही पानी से बाहर निकाल लिया दिखाया है, किन्तु अचेतावस्था में। यही वह अवस्था है जिसमें वह यम से साक्षात्कार करता है। यम वस्तुतः मृत्यु का ही तो पर्याय है जो नचिकेता के अन्तर्मन में स्थित है। यद्यपि डॉ. रामदरश मिश्र जैसे प्रबुद्ध समीक्षक 'आत्मजयी' की इस घटना की यथार्थता पर संदेह व्यक्त करते हुए लिखते हैं- "कवि ने नचिकेता की अचेतावस्था में ही यम से उसका साक्षात्कार कराया है अर्थात् वह अचेतावस्था में ही सपने देखता है। मैं नहीं कह सकता कि अचेतावस्था का मनोविज्ञान वही होता है जो 'आत्मजयी' में दिखाया गया है। क्या अचेतावस्था में व्यक्ति चिन्तन की उतनी गहरी और शृंखलित बातें सोच सकता है?' डॉ. मिश्र की इस शंका का समाधान करते हुए डॉ. सविता गौड़ लिखती हैं--"अचेतावस्था में ज्ञान और अनुभूतियों की प्राप्ति एकदम नकारी नहीं जा सकती, जैसाकि कुछ आलोचकों का मत है। क्योंकि चिकित्सा-क्षेत्र में मृत घोषित व्यक्तियों के पुनर्जीवित हो उठने के किस्सों को एकत्रित कर उनका अध्ययन किया जा रहा है। उस तथाकथित मृत्यु-काल के अनुभवों में क्रमबद्धता और समानता देखकर वैज्ञानिकों को आश्चर्य है। अतः अचेतावस्था में नचिकेता द्वारा जीवन-बोध की उपलब्धि अवैज्ञानिक नहीं कही जा सकती।

'आत्मजयी' के रचयिता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं मौलिक उद्भावना यही है कि उन्होंने मूल कथानक में कोई परिवर्तन न करके भी स्थितियों को बदल दिया है। रचना का मूल आधार पौराणिक होते हुए भी काव्य की कथा का संधान वर्तमान की प्रबुद्ध चेतना से संयुक्त एवं पुष्ट है।

काव्य का आरंभ नचिकेता तथा वाजश्रवा की यज्ञ-समापन असहमति से होता है। नचिकेता की इस असहमति और वाजश्रवा के क्रोध को कवि ने नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का प्रतीक माना है। तभी नचिकेता पिता से सहमत न हो नये भाव-बोध एवं आज के मानव का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहता है-

नया जीवन-बोध संतुष्ट नहीं होता
ऐसे जवाबों से जिनका संबंध
आज से नहीं अतीत से है
तर्क से नहीं रीति से है।

आज प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीन और अर्वाचीन मूल्यों के बीच सीधा संघर्ष चल रहा है। दूसरी ओर हिन्दू दर्शन एवं अस्तित्ववाद जैसे पाश्चात्य दर्शन का भी

क्वचित् तिरस्कार का आरोपण किया गया है। आज का आदमी जिन परिस्थितियों में जी रहा है उनमें एक साथ रति, मृत्यु, युद्ध, विषाद एवं महामारी इत्यादि सभी स्थितियां जुड़ी हैं। पुनश्च, वह स्वयं को एकाकी अनुभव करने लगा है। इसीकी पुष्टि नचिकेता के शब्दों में यों की गई है--

मैं जिन परिस्थितियों में जिन्दा हूँ
उन्हें समझना चाहता हूं-- वे उतनी ही नहीं
जितनी संसार और स्वर्ग की कल्पना से बनती हैं
क्योंकि व्यक्ति मरता है
और अपनी मृत्यु में वह बिल्कुल अकेला है
विवश/असान्त्वनीय।

आज के मनुष्य की यही तो विडंबना है कि वह स्वयं को अस्थिर मानने के साथ शंकित भी मानता है, क्या, क्यों, कैसे एवं कहां प्रश्नमूलक शब्दों में वह आबद्ध है, साथ ही उसकी बौखलाहट भी व्यंजित हुई है। उसकी पुष्टि 'आत्मजयी' की अंतिम पंक्तियों से सहज ही हो जाती है--

जीवन क्या है?
मुक्ति क्यों?
मुक्ति कैसे?
ईश्वर कहाँ?

निष्कर्षतः प्रस्तुत है आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का मत "कुंवरनारायण का कथन है कि नचिकेता के आख्यान का वर्तमान युग की पृष्ठभूमि में विशेष महत्व है। जीवन के व्यावहारिक या भौतिक पक्षों की सर्वोपरिता के इस युग में अंतरंग या आत्मतत्व की ओर प्रस्थान करना सामयिकता का तकाज़ा है। मेरे विचार से नचिकेता का आख्यान केवल आज के लिए ही सामयिक नहीं है वह सर्वकाल के लिए सामयिक है।"

'आत्मजयी' में आधुनिक युगबोध- 'आत्मजयी' आधुनिक संवेदना का काव्य है। एक मिथकीय प्रसंग के माध्यम से कवि 'जीवन क्या है?', 'मृत्यु क्यों?' 'मुक्ति कैसे?' 'ईश्वर कहाँ?'-- इन चिरंतन प्रश्नों के उत्तर आधुनिक दृष्टि से खोजने का प्रयत्न करते हैं। वे स्वयं कहते हैं-- "आत्मजयी में उठाई गई समस्या मुख्यतः एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है। कथानक का नायक नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता है, तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्तिभर ही उसके लिए पर्याप्त नहीं। उसके अंदर एक बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए केवल सुखी जीवन काफी नहीं, सार्थक जीवन जरूरी है। यह जिज्ञासा ही उसे साधारण प्राणी से विशिष्ट, उन मनुष्यों की कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना, कायिक जीवन को स्वप्न समझा और जिन्होंने ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया, बल्कि उस चरमलक्ष्य के लिए अपना जीवन सर्मर्पित कर दिया जो उन्हें पाने योग्य लगा।"

यों नचिकेता प्रखर बुद्धिमान, स्वतंत्रचेत्ता, भावुक, संयमी तथा विवेकशील युवक के रूप में हमें प्रभावित करता है, जबकि वाजश्रवा धर्म की रूढ़ियों को ढोने वाले अहंकारी के रूप में पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह वस्तुवादी दृष्टिकोण का व्याख्याता-सा दीख पड़ता है। उसका यही रूप उसके पुत्र को अखरता है। इसीलिए तो नचिकेता कहता है-

तुम्हारी दृष्टि में में विद्रोही हूँ
क्योंकि मेरे सवाल तुम्हारी मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं।
नया जीवन-बोध संतुष्ट नहीं होता
ऐसे जवाबों से जिनका संबंध
आज से नहीं अतीत से है, तर्क से नहीं रीति से है।

'आत्मजयी' के उक्त दोनों प्रमुख पात्र मिथकीय ढांचे में ढले होने पर भी मौजूदा सदी के जीते-जागते पात्र लगते हैं। मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत इन पात्रों में आधुनिक मानव स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता दिखाई पड़ता है।

एक स्वतंत्रचेता, चिन्तनशील प्रबुद्ध युवक का प्रतिनिधित्व करने वाले नचिकेता को समझे बूझे बिना केवल परंपरा के नाम पर किसी बात को

स्वीकार कर लेना असह्य है। यही कारण है कि वह पिता द्वारा बूढ़ी, दूध रहित किंवा अनुपयोगी गायों का दान करते देखकर प्रश्न उठाता है। इस प्रकार का दान उसे केवल पाखण्ड प्रतीत होता है। वह पिता को रोकना चाहता है। वह आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतीक बन जाता है। वस्तुतः नचिकेता उस नई पीढ़ी की आवाज है जो अपना मार्ग और गंतव्य स्वयं ढूंढ़ना चाहती है--

लेकिन यदि तुम्हारे अनुसरण से भिन्न भी
मेरी कोई सत्ता है
तो उसे आक्रांत मत करो
अवसर दो
कि वह पनप सके प्रसन्न
खुली धूप और ताजी हवा में

नचिकेता एवं वाजश्रवा की चरित्रगत विशेषताएँ- नचिकेता एक वैचारिक चरित्र है। वह अपने विचारशील व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कृतनिश्चय है। 'आत्मजयी' के मूल स्रोत 'कठोपनिषद' में नचिकेता की अपने संकल्प के प्रति ऐसी प्रतिबद्धता परिलक्षित नहीं होती। जबकि यहां नचिकेता सम-सामयिक समस्याओं के समाधान के लिए जिस प्रकार जूझता दीख पड़ता है, इसे कवि की मौलिक उद्‌भावना ही माना जाना चाहिए। जीवन मूल्यों की तलाश में व्यग्र एवं प्रयत्नशील रहनेवाला नचिकेता सुखी जीवन जीने के स्थान पर सार्थक जीवन जीने का आकांक्षी है। वस्तुतः यह अन्वेषक है। भौतिक सुखों को नकार कर जीनेवाला नचिकेता चरम सत्य के प्रति निरंतर जागरूक है--

मुझको इस छीना-झपटी में विश्वास नहीं
मुझको इस दुनियादारी में विश्वास नहीं
हर प्रगति-चरण मानव का घातक लगता है।
हारजीत आपाधापी और दबावों में
हम चाहे जितना पाएं कम ही लगता है।

वह केवल उस जीवन-दृष्टि का अभिलाषी है जिससे वह संत्रास से आक्रांत वर्तमान मानव के जीवन को बचा सके--

मिल सके अगर तो
एक दृष्टि चाहिए मुझे
जीवन बच सके
अंधेरा हो जाने से बस।

नचिकेता आज की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह चिरंतन सत्यों के लिए उद्विग्न रहते हुए इनके समाधान की दिशा में जाग्रत रहता है। वह ऐसे जीवन मूल्यों में आस्था रखता है जो व्यक्ति को महत्त्व न देकर सार्वजनिक एवं सार्वकालिक हों। वह आज के जागरूक व्यक्ति की संवेदना को भलीभांति जीता है। निःशेष बची अस्मिता की सुरक्षा में अनवरत जूझता है। क्योंकि आज चारों ओर स्वार्थ और छल का बाज़ार गर्म है। ऐसे में मानव-मूल्यों की सुरक्षा बड़ा ही दुष्कर कार्य है। वह अस्तित्व की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहता है-

यदि यथार्थ है मृत्यु भी
तो मृत्यु ही यथार्थ हो जो सकती है
इस तरह कि वह जीवन पर छा जाए

जीवन के प्रति नचिकेता आस्थावादी है, वह विचारशील है। वह मृत अतीत का शव ढोने का पक्षधर नहीं है। वह अपनी विचारशील प्रतिभा से क्षमता व सामर्थ्य का सही उपयोग करना चाहता है, क्योंकि उसे इन्हीं संवेदनाओं के सहारे अपने भावी को सजग होकर जीना है--

लेकिन यदि तुम्हारे अनुसरण से भिन्न भी
कोई सत्ता है। तो उसे आक्रांत मत करो/अवसर दो
कि वह पनप सके प्रसन्न/ खुली धूप और ताजी हवा में....

उसे अपनी शक्ति से नष्ट मत करो,
उनसे शक्ति ग्रहण करो, क्योंकि तुम्हें
अभी उसके द्वारा भविष्य में भी जीना है-
केवल उस तक ही समाप्त नहीं हो जाना है।

नचिकेता परंपरा-विरोधी है। वह जन-जीवन के शाश्वत मूल्यों की सुरक्षा के लिए चिंतित है।

डॉ. कमलाप्रसाद पांडेय के अनुसार-- "आत्मजयी की विषयगत भूमिका में नया आलोक देकर कुंवर नारायण ने उसे प्रस्तुत किया है। यहां का नचिकेता मानव-मूल्यों का शोधी है। उसकी संगति परंपरावादी पिता से नहीं बैठ पाती, इसलिए पिता से संघर्ष करना पड़ता है। पिता और पुत्र की संघर्ष-कहानी प्राचीन मूल्यों एवं नवीन मूल्यों के द्वंद्व की कहानी है। इस द्वंद्व को कवि ने भली प्रकार उभारा है।"

इस कृति का अगला महत्त्वपूर्ण पात्र है वाजश्रवा। वह कथा-नायक नचिकेता का पिता है। कवि ने वाजश्रवा के चरित्र का विकास नचिकेता के संवादों के माध्यम से किया है। नचिकेता की भांति वाजश्रवा का चरित्र विधान भी 'कठोपनिषद' की सीमा से बाहर नहीं निकल पाया है। वाजश्रवा को अपने आत्मबोध का पता नहीं चलता। इसकी सूचना उसे बार-बार नचिकेता द्वारा मिलती रहती है। 'कठोपनिषद' में उसके प्रभुत्व की जानकारी मिलती है। नचिकेता द्वारा वाजश्रवा के प्रभुत्व का बोध कराते हुए कवि का कहना है---

कभी तुम्हें विशाल सेना के साथ रण करते
कभी आखेट करते
कभी न्यायाधीश पद से मुखरित
कभी अंतःपुर में विलास करते

वाजश्रवा धर्म की रूढ़ियों को ढ़ोनेवाले अहंकारी राजा के रूप में पुरानी पीढ़ी का प्रतीक एवं वस्तुवादी दृष्टिकोण का व्याख्याता-सा दीखता है। उसका यही रूप उसके पुत्र को अखरता है। यही कारण है कि पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि वाजश्रवा नवीन युग को संज्ञा तो प्रदान करता है, पर महत्ता स्वीकार नहीं कर पाता - मुकुट-सिंहासन, सेना, सभासद से व्यक्ति स्वयं की पहचान नहीं कर सकता। अपने पिता के प्रति कहे गए नचिकेता के निम्नलिखित शब्द जहां पुरानी पीढ़ी की खोखली मान्यताओं स्वार्थान्ध आडंबरों को उद्घाटित करते हैं, वहीं वाजश्रवा की चरित्रगत विशेषताओं पर भी प्रकाश डालते हैं---

समझाओ मुझे अपने कल्याण का आधार
ये निरीह आहुतियां ! यह रक्त ! यह हिंसा !
ये अबोध तड़पनें ! बीमार गायों-सा जन-समूह !

कवि ने अपनी ओर से वाजश्रवा के चरित्र में यथोचित मात्रा में समसामयिक बोध की दृष्टि से कुछ मौलिक परिवर्तन करने का प्रयत्न अवश्य किया है, किंतु फिर भी उसका चरित्र 'कठोपनिषद' के दायरे तक ही सीमित है।

भाषा-शैली- "नई कविता जिस भाषा का व्यवहार करती है, वह नतो अभिजात है और न ही हम उसे कलात्मक कह सकते हैं। अत्यंत अनौपचारिकता और व्यावहारिकता ने नई कविता को यथार्थ के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है।"-- अज्ञेय जहाँ तक 'आत्मजयी' के भाषा-शिल्प का प्रश्न है, प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. हरिचरण शर्मा को इसका शिल्प कथ्य के अनुरूप लगता है किन्तु उन्हें जो सबसे बड़ी शिकायत है वह है आलोच्य कृति की भाषा से। वे लिखते हैं-- "आधुनिक बोध को रूपायित करने वाली कविता में भाषा की जो सहज संवेद्यता अपेक्षित है वह 'आत्मजयी' में नहीं है। अनेक स्थलों पर लगता है कि कवि आभिजात्य भाषा का प्रयोग करके उसे भारतीय परिवेश दे रहा है जो कृति की मूल संवेदना से मेल नहीं खाती है। 'आंगन के पार द्वारा' (अज्ञेय) की भाषा की चेतना इस कृति में भी उपलब्ध है। आधुनिक बोध के प्रतीक पात्र नचिकेता के संदर्भ में निर्हेतुक, असृष्ट, आद्यंत, अपरिमित, विकीर्ण, ऊर्जस्वी सागर प्रक्षालितपग, स्फुर धन उत्तरीय, वन प्रान्तर, जराजूट आदि शब्दों का प्रयोग बेमानी लगता है। सही बात यह है कि इसमें भाषा तीन स्तरों पर खड़ी है। एक स्तर पर तो छायावादी है जिसमें रूमानियत भरी हुई है और दूसरा आभिजात्य शब्दावली अलंकृत है तथा तीसरा नई कविता का है। जहाँ कवि नई कविता की भाषा का प्रयोग करने में सफल हुआ है वहाँ चिन्तन स्पष्ट हो गया है और सहज प्रेषणीय बन गया है। वस्तुतः व्यावहारिक चिन्तन को

प्रस्तुत करनेवाली भाषा में जिस आत्मीयता की अपेक्षा होती है वह 'आत्मजयी' में नहीं है। अतः 'आत्मजयी' की सबसे बड़ी कमजोरी भाषा विषयक है। यही कारण है कि कई स्थलों पर चिंतन में भी 'ठण्डापन' और 'ढीलापन' दिखाई देता है। कवि यदि चाहता तो इसमें 'नाटकीयता' के सहारे सहज और प्रभावशाली संवेदनाओं को उभार सकता था, किन्तु इतिवृत्त की स्थूलता और वैचारिक बोझिलता ने ऐसा नहीं होने दिया है। साथ ही इस काव्य का प्रारंभ ही यदि 'आत्महत्या' के बिन्दु से होता और कुछ अन्य पात्र भी आधुनिक बोध का भार ढ़ोते तो संभव है यह कृति और भी अधिक सफल बन गई होती।"

प्रतीक योजना- 'आत्मजयी' कठोपनिषद पर आधारित एवं कविवर कुंवर नारायण-रचित नई कविता की महत्त्वपूर्ण मिथकीय प्रबन्धकृति है। इसमें कठोपनिषद के वाजश्रवा, नचिकेता तथा यम को यथावत प्रस्तुत किया गया है। तथापि यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पात्रों पर सामयिक समस्याओं का प्रभाव अनेकत्र दिखाई देता है जिसमें परंपरावाद तथा अनुकरण के स्थान पर सृजन और आत्मवाद को व्याखायित किया गया है।

'आत्मजयी' का वाजश्रवा पुरानी पीढ़ी और वस्तुवादी दृष्टिकोण के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। दूसरी ओर उसका अपना पुत्र नचिकेता का चरित्रांकन नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करनेवाले उस युवक के रूप में हुआ है जिसमें परंपरा एवं अनुकरण के प्रति गहरी वितृष्णा तथा सृजन व आत्मवाद के प्रति गहरी रागात्मकता है। इसका संबंध उपनिषद से है।

'आत्मजयी' की भूमिका में स्वयं कवि की स्पष्टोक्ति चिन्त्य है-- "नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति तथा वाजश्रवा का क्रोध में नचिकेता को मृत्यु दे देना, न केवल नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है, बल्कि उन वस्तुपरक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषत्कालीन दृष्टिकोणों का भी प्रतीक है जिनका एक रूप हम अपने आज के जीवन में भी पाते हैं।..... परोक्ष रूप से मेरे मन में यह साम्य भी था कि वाजश्रवा वैदिक कालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है और नचिकेता उपनिषत्कालीन आत्मपक्ष का प्रतीक।"

बिम्ब-विधान- 'आत्मजयी' में कई बिम्ब पर्याप्त सफलता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। आलोच्य प्रबंध काव्य में यम का प्रवेश बिम्बों के माध्यम से ही होता है। वह अपने पैरों को घसीटते हुए आ रहा है। उसके पैरों में घाव के निशान दिखाई पड़ रहे हैं। यम को प्रथम मृतक भी माना गया है, जिसका अनुसरण करने के लिए हर प्राणी बाध्य है। यम का शरीर हरा और वस्त्र लाल माना गया है। वर्ण संवेद्य बिम्ब का भी यह एक सफल उदाहरण है।

घसीटते हुए पैर
पावों में घावों का निशान।
क्या वन की हरियाली पर यह
संध्या का ताजा रक्त
लाल अंशुक-सा मुझको दिखाता है?
या किसी महादानव का शव है हरा-हरा।

कवि ने भाव बिम्ब के माध्यम से नचिकेता में आधुनिक मनुष्य की मनःस्थितियों को कुशलता पूर्वक व्यक्त किया है-

अपने विश्वासों के कंधे पर खड़ा हुआ
जीवन का एक हताश बिन्दु
चेतना केन्द्र चिह्नित मनुष्य
भयभीत अधर में टंगा हुआ।

201, सच फ्लैट, सद्धिविनायक हॉस्पिटल सर्कल, बाल वाटिका, कांकरिया गेट नं. 5, मणिनगर, अहमदाबाद-380008
मो. 9429625150

●

अगर आप सूर्य की तरह चमकना चाहते हैं तो पहले सूर्य की तरह तपो।

समकालीन हिंदी कहानी का समाज

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

भारत में अधिकांश लोग गाँवों में रहते हैं। कभी गाँव सरलता, शुचिता और संस्कृति का गढ़ माना जाता था। पर आज यह धारणा मिटती जा रही है। कारण है गाँव खंडित हो रहे हैं। उन पर आसपास के नगरों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। गाँव से निकलकर रोजी-रोटी की खोज में जो शहर गए हैं, उनकी हालत दयनीय हो गई है। **श्यामलाल का अकेपालन (संजय कुंदन)** इस कल का गवाह है कि जब वह इंसानों के उस जंगल में पहुँचता है, जिसे वह आदर्श मानता रहा, तो उसका स्वप्न भंग हो जाता है। उसे विश्वास नहीं होता कि महानगरीय विद्रूपताएँ इंसान को इतना खोखला बना देती हैं कि वह थोड़ा-सा पाने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है। गाँव का सबसे जवान गोपी बाउंसर की बेहद अनजान नौकरी करने लगता है। वह कभी यदि बाउंसर से इंसान की ओर लौटने का प्रयास करता है, तो उसे पीछे धकेल दिया जाता है कि वह जरा भी इंसान नहीं है बल्कि महज वेतन पानेवाला एक बाउंसर है जिसके पास रिश्ते, संवेदना या अपनी इच्छा का कोई स्थान नहीं है। इसकी शीर्षनामा कहानी **'श्यामलाल का अकेलापन'** में श्यामलाल को लगने लगता है कि सालों से नौकरी करने के बाद भी वह यहाँ के अनुकूल नहीं है। वह समाज और अपने सहकर्मियों के बीच गैरप्रासंगिक और मिसफिट बनता जा रहा है। पंक चतुर्वेदी इसकी समीक्षा बताते हैं-"उसकी चिंता है कि अब यहाँ की संस्कृति इंसान को ही एक उपभोग की वस्तु बना रही है। सुख-दुःख, रागद्वेष, सहजता से बहुत दूर।" इंसान रोबोट की तरह एक मशीन बनता जा रहा है।

डॉ. दिनेश चमोला शैलेष **'गिरिजा दा'** में बताते हैं कि बेटी बेचने की प्रथा आज तक किसी-न-किसी रूप में जीवित है। भुवनी के रिश्ते में दादा कुछ पैसे कमाना चाहते थे यानी सौदा करना चाहते थे। उनका मन था कि उस पैसे से बकरियों के कुछ गोठ में ही वृद्धि हो जाए परंतु बड़ी चतुराई और विनम्रता से प्रस्ताव देते हैं : "हम लड़की को बेचनवाले तो नहीं हैं लेकिन आज के जमाने में कम-से-कम भोज-भात (दावत) की सामग्री की मदद ही सही....।" और वह दो हजार रुपये लेकर हामी भर देते हैं। (उपरिवत् पृ.-57)।

घूसखोरी, भ्रष्टाचार, दो नंबरी काम का ऐसा बोलबाला है कि असली काम करने वाला पिट जाए तो कोई परवाह नहीं पर दो नंबरी, घूस, पैरवी वाले कभी हारते नहीं। नतीजा यह है कि शहनाई वाले पंडित मेवाराम आकाशवाणी के निदेशक, अपने ही भांजे को एक लाख की

घूस देकर प्रथम कोटि के शहनाई वादक बन जाते हैं। घूस के प्रस्तावक पर ध्यान जाना जरूरी है। पहली किस्त में पचास हजार रुपए, शेष सफलता मिलने पर चुकाने की शर्त है। पूरे एक लाख लेने के तिकड़म का नजारा देखा जाए : "कंसर्ट में शहनाई में एक ही फूँक मारोगे तो कलई खुल जाएगी कि कितने बड़े कलाकार हो। अरे यह तो जीवन भर आकाशवाणी से टॉप ग्रेड कलाकार के रूप में जुड़े रहोगे, फीस वसूलते रहोगे।" (शहनाई वाले पंडित मेवाराम : नीरज, माधव, स.भा. सा. ज.-अगस्त, 2016, पृ.-141)। **मीडाज टच वाली हैट्रिक** (अरुणेन्द्र नाथ वर्मा) में भी घूस के निरंतर लेनदेन की प्रथा बलवती होकर उजागर हो गई है। इंस्पेक्टर यादव, एस.एच.ओ. (थानाध्यक्ष) को लाखों की घूस वसूलकर देता है और वाहवाही लूटता है। उसकी चमत्कारी प्रकृति और परिणति पर चौंकानेवाला बयान सब स्पष्ट कर देता है। "दो महीनों में एक ही पार्टी की आँत के अंदर हाथ घुसाकर एक-के-बाद एक पंद्रह-पंद्रह लाख करके तीस लाख वसूल लेना, उसमें से आधे रुपए सी.ई.ओ. साहब और ऊपर के लिए चुपचाप पहुँचा देना, शेष में से पाँच अपने प्यादों और फर्जियों के लिए अलग कर देना और खुद को केवल दस लाख रखना।" (उपरिवत्, पृ.(49)।

सच यह है कि आज की कहानी समकालीन सच से सीधे आँख मिला रही है। वह उपभोक्ता संस्कृति में बाजारवाद का संकट हो या फिर आतंकवाद, सांप्रदायिकता की समस्या, स्त्री चेतना पर केंद्रित विमर्श, जातिवाद के विष से व्याप्त सामाजिक घुटन, पीड़ा या फिर वृद्धाओं की समस्या। रमेश उपाध्याय की लंबी कहानियों का संकलन है - **'त्रासदी... माई फुट'** (शब्द संधान, दिल्ली)। यह भोपाल गैसकांड पर आधारित है। यह एक तरह से भोपाल गैस कांडोत्तर त्रासदी की पोल खोलती है। राजन और नूर का संवाद यह स्पष्ट करता है कि यह एक हादसा नहीं बल्कि हत्याकांड है। नूर के इसे 'ब्लडी मेसेकट' कहता है। नूर अब चाहते हैं कि उस महाविनाशक कांड से लोग सबक लें कि फिर ऐसा हत्याकांड न हो सके : "हमें उन जख्मों को तबतक कुरेदते रहना चाहिए जब तक दुनिया में ऐसे हत्याकांड बंद नहीं हो जाते।" कहानीकार का मानना है कि यह कोई प्राकृति घटना नहीं है, जिसके लिए किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सके। इसी के विरुद्ध गुस्सा फूटता है- 'त्रासदी माई फुट' में। इसीकी एक कहानी (प्राइवेट पब्लिक) जो बताती है कि वैज्ञानिक प्रगति के कारण नित नए-नए बदलाव आ रहे हैं, नई तकनीक से बदलते जा रहे दूरभाष से शहरों के बदलते स्वरूप का। मसलन नई तकनीक पुराने कर्मचारियों को अनुपयोगी बना रही है और उन पर अपने अस्तित्व का संकट मंडरा रहा है।

उक्त संग्रह की कहानियाँ अपनी संवाद शैली में बताती हैं कि कैसे सत्ता, बाजार और मीडिया मिलकर एक ऐसा इंसान तैयार कर रहे हैं जो सिर्फ उनकी इच्छाओं पर चलता है। उक्त बड़ी कहानी का अंत यह है कि सबको इस बदालव (कम्प्यूटर इंटरनेट का बढ़ता प्रभाव) को स्वीकारना होगा अन्यथा वह नेपथ्य में फेंक दिया जाएगा। महेश दर्पण इसकी समीक्षा में बताते हैं : "बड़े कलात्मक और खामोश अंदाज में यह कंज्यूमर कल्चर के विस्तार में मास मीडिया की भूमिका और जीवन पर पड़ रहे विज्ञापन जगत के प्रभाव को सामने रखती है। कंपनियों के फार्मूले-बेटर फास्ट और चीपर की परतें उघाड़ते हैं।" (समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2014, पृ.-212)। यहाँ कथाकार की दृष्टि मजदूर को भी कंज्यूमर गिरफ्त में पाती है। वे लोग अब अपनी ऊर्जा को आंदोलन में नहीं चीजों को खरीदने और उनकी किस्त चुकाने में लगाने लगे हैं। अब ये रास्ता नहीं है (मुरारी शर्मा) में भी बाजारवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जहाँ मैदान था, दस-बीस फुट के गड्ढे हो गए थे। गाय, भैंस का बसेरा था, वहाँ विशालकाय जे सी बी मशीनें, ट्रैक्टर, टिप्पर आदि

लगे हैं, जो रेत, बजरी निकलाकर लाखों कमाते हैं। माटी बिक रही है सोने में तो फिर कल की फिक्र किसे है? फसल बीज बुनाई से लेकर कटाई तक के काम मशीनों से होने लगे हैं। सामूहिक श्रम की लय, ताल और लोकगीत भी कहाँ खो गए हैं। टूटते परिवारों ने दिलों की दूरियाँ बढ़ा दी हैं। समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2014 पृ.-102)।

नीलाक्षी सिंह **(परिंदे का इंतजार-सा कुछ)** की कहानियाँ समकाल के महत्वपूर्ण मसलों से सीधे टकरातीं हैं। वह उपभोक्ता संस्कृति में बाजारवाद की समस्या हो, सांप्रदायिकता की समस्या हो, आतंकवाद की समस्या हो, या फिर समस्याएं हों स्त्री-चेतना-विमर्श, वृद्धावस्था, जातीय समीकरण, जातिगत इतर पर युवा पीढ़ी के प्रेम की.... इनकी 'प्रतियोगिता' कहानी में बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति पर सीधे निशाना साधा है। किस प्रकार देसी बाजार के देसी ढंग पुराने पड़ते गए। जलेबी, कचोरी को नए युग के फास्ट फुड ने पछाड़ दिया। बमशंकर भंडार और छक्कन प्रसाद ऐंड संस नामक मिठाई की दुकनों ने प्रतियोगिता के बल पर एक दूसरे को पछाड़ने का माद्दा अपना लिया। फलतः उनकी दुकानें गईं। रोजी-रोटी की समस्या आ गई। छक्कन प्रसाद ऐंड संस, फास्टफुट-सेंटर एक प्रतीक है, जिसके माध्यम से पूरे देश के गाँव, कसबों के वैश्वीकरण की आँधी में एक ग्लोबल गाँव के रूपांतरण की पीड़ा दर्ज है। इन स्थितियो की मार्मिकता 'उस शहर में चार लोग रहते थे' में अभिव्यक्त हुई है। माल्थस के संदर्भ से इस कटु यथार्थ को उकेरने का प्रयास किया गया है।

"यह देश, यह समय भी तकनीकी क्रांति नामक एक नई क्रांति से गुजर रहा था। मानव की कीमत दिन-ब-दिन निचले सूचकांक को छू रही थी और जनसंख्या भी एक स्थानीय देवता के डग के समान तीनों लोक नाप लेना चाहती थी।" छोटे राजा की बड़ी प्रोडक्शन कंपनी हाल में हुए युद्ध में वीरगति प्राप्त शहीद की स्मृति का एलबम बनाकर कैश कर रही है। इसका मूल स्वर है - 'जो लौटकर फिर न आए।' मनुष्य के आँसू भी किस प्रकार बाजार के लिए मूल्यवान बन जाते हैं। 'परिंदे का इंतजार सा कुछ' (शीर्षनामा कहानी) में बाबरी मस्जिद प्रकरण के संदर्भ में सांप्रदायिकता की समस्या की गहन पड़ताल हुई है। इसी प्रकार वृद्धावस्था की समस्या 'एक था बुझवन' में बड़े वैज्ञानिक ढंग से उठाई गई है। बुढ़ापे में स्मृति-क्षरण के कारण और उन्हें रोकने के उपाय पर विचार होता है। कहानी का अंत बड़ा नाटकीय है। कथ्य को सूत्र रूप में व्यंजित करता है। "बुझवन की आत्मा बदहवास भागी जा रही थी गीस महोदय के दरबार में यह अर्ज करने कि भारत के भावी बूढ़े अपना पिछला भूलकर ही सूखी रहेंगे। उन्हें गीस महोदय के स्मृतिपिल्स की कोई दरकार नहीं।"

इसी प्रकार 'फूल' कहानी जन्मू-कश्मीर के आतंकवाद की स्थितियों पर केंद्रित है, जिसमें भारतीय क्रिकेट टीम के उपकप्तान राठौर का अपहरण कर अपने चौबीस साथियों की रिहाई की शर्त आतंकवादियों ने रखी है। एक पत्नी को जीवन की सारी सुख सुविधाएँ मिल जाएं, बेटे पोते से भरा घर हो परंतु पति का प्रेम नहीं मिले, तो उसका जीवन शून्यता से भर जाता है, लगता है एकदम वीरान, उचाट। कहानी में नायिका का भोगा सत्य है "जहाँ मेरी कीमत मादा से ज्यादा नहीं् थी, जहाँ मैं सिर्फ जरूरत थी चाह नहीं और पैंतीस हजार वर्षों (पैंतीस वर्षों का दुर्वह भार पैंतीस हजार हो गया) तक मैं ऐसे ही चलती रही। भीतर धीरे-धीरे सुलगती खुद को राख होते देखती।" (समकालीन भारतीय साहत्य मार्च अप्रैल 2014 अब उठूँगी राख से : जया जावानी पृ.-37)। एक जीवन वह था, जिसे उसने घिसटे हुए पार किया था। दूसरा वह था, जिसे वह अपने पैरों से चलकर पार करना चाहती थी। पति की मृत्यु से वह स्वतंत्र हो गई थी। लगा था उसका भी कोई अपना 'वजूद' है। वह फिर अपना निर्णय ले पाएगी। अपने

'स्व' के बल पर कुछ कर पाएगी। पति से ऊब, नफरत, वितृष्णा से वह भरी रहती है। परंतु पति की मृत्यु पर उसे सत्य का बोध हो जाता है। वह एक निश्चित मुकाम तय कर लेती है कि वह इसगलीज जिंदगी से ऊपर उठेगी अपनी निजता में विचरण करेगी। शादी अपनी आत्मा का हनन है: "पलंग पर बिछी वे सारी चीजें रखी थीं, जिन्हें मैंने थोड़ी देर पहले, निकाला था और वे भी, जो मेरी नजर बचाकर मेरे भीतर से निकलकर बाहर आ गई थीं। डर, कुंठा, नफरत, सेक्स, जंग, दुःस्वप्नों का ढेर, और न जाने क्या-क्या (शादी कोई बुरा सौदा नहीं है, अगर हम अपने कंबख्त आत्म को दूर तक खदेड़ आएँ या गला दबाकर मार दें।)" (उपरिवत् पृ.-43)।

उधर कलसी है, जिसने एक दरिद्र, विजातीय कुरूप नवयुवक से प्यार किया था और लोगों के लाख समझाने पर भी उससे विवाह किया था। फिर एक दिन उसकी हत्या कर पुलिस के सामने आत्मसर्पण किया था। पहले उसे उस युवक पर भरोसा था, उसके अखंड प्रेम में आस्था थी। बाद में उसे किसी औरत के साथ लीन देखकर वह अपने को रोक नहीं सकी, उसकी हत्या कर दी। कलसी का यह सत्योद्गार सारी धुँध को साफ कर देता है। प्रेम पूर्ण समर्पण है या फिर पूर्ण विरक्ति, घृणा में हो जाती है उसकी परिणति। "इसकी जिंदगी को सँवारने के लिए भी कम जतन नहीं किए थे मैंने-- सीना-पिरोना करके गृहस्थी की गाड़ी को लाइन पर लाने की कोशिश की.... मैं नहीं चाहती थी कि कासिम इस मरी के जाल में फँसकर अपनी जिंदगी बरबाद कर लें।" (समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2015 में **कलसी** : हबीब कैफी, पृ.-99)।

आधा खुला दरवाज (तरसेम गुजराल) में इस बात पर बल है कि लाख बाधाओं विपरीतताओं में भी ब्याही पत्नी पति का कितना साथ देती है। जहाँ ज्यादा झगड़े हैं, वहाँ प्यार भी ज्यादा है। इसका नायक कभी दो-चार घंटे साथ रहने वाली एक पत्रकार से प्रेम निवेदन कर चुका था पर वह संभव नहीं हुआ। आज उसी प्रेम की दुहाई देकर वह उस प्रसिद्ध पत्रकार महिला से अपने बच्चों की पढ़ाई, लिखाई की मदद माँगने आया है, जो मौखिक सहानुभूति तक सिमट जाता है कुछ हो नहीं पाता है। नायिका कमरे में चली गई तो यह उधर ही ताकता रहा। थोड़ा दरवाजा खुला। उसकी दृष्टि तीर की तरह उस पर टिक गई फलतः "उसके गोरे जिस्म की झलक मिली और उसने दरवाजा पैर से उढ़का दिया। अब दरवाजा आधा खुला था।" (समकालीन भातरीय साहित्य, मई-जून 2005 पृ.-113)।

भोगवाद, सेक्स की इच्छा कितनी उद्दाम होती है कि एक माँ अपने सौतेले बेटे के साथ भोग करती है और उसे हर हाल में अपनी पत्नी से अलग रखने का षड्यंत्र करती रहती है। वह आखिर एक दिन ससुराल से जुड़े भ्रमजाल से जल्दी ही बाहर निकल आई। उसको आत्मबोध हो गया : "जासूसी करती आँखें और कठपुतली की मानिंद हिलते-डुलते पति जिनकी डोर उनकी माँ के हाथों रहती।" (उपरिवत् में **धुआँ और धुंध**, रजनी गुप्त पृ.-119)। पति कैसी छद्म सफाई देता है कि होमफ्रंट पर माँ का ही चलता है। वह जो कहे, वही शिरोधार्य। फिर एक बार संयोग से पति उसके साथ कहीं बाहर गया उसकी नौकरी की जगह पर तो पता चल पाया कि उसका पति नपुंसक नहीं है भले ही वह अपनी सौतेली माँ की वासना की पूर्ति का माध्यम बना रहे। वह अंत तक धुआँ और धुँध में ही जीने को विवश रही। उसे पहली बार सुखद अनुभूति हुई, जब उसके रोने से वह प्रभावित हुआ। "थोड़ा-सा पिघला और हमारे बीच पहली बार पति-पत्नी के संबंध बने यानी ये नपुसंक नहीं हैं। फिर क्यों इतना दुराव?" (समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005, पृ.-121)।

कहानियाँ लिखने के उद्देश्य अलग-अलग हैं। पहलू भी अलग-अलग। वे गगनचारी पक्षियों की तरह कभी उतरते हैं, तो कभी अपने जीवन के बीच से ही

किसी आख्यान का स्रोत निकाल लेते हैं। तब पात्र अलग-अलग परिवेश के होते हैं। भाषा, मानसिकता अलग-अलग। उनमें ऐश्वर्य का भोग है, तो अभाव की जानलेवा पीड़ा भी है। कमलेश्वर की कहानियाँ ऐसी ही हैं, जो उनके भोगे गए सत्य का अनावरण हैं, तो तत्कालीन समय के अंतर्विरोध का बयान भी। उनकी रचनात्मकता तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन से अवश्य प्रभावित हुई। **'आजादी मुबारक'** स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते समय और त्रासदियों को दर्शाती है। यहाँ पाठकों के सामने ढेर पात्र उभरते हैं जो लगता है मजेमेबाज हों। आते हैं रंगमंच पर, फिर चले जाते हैं। आजादी का जश्न और त्रासदी इसके दो सिरे हैं। यहाँ वेश्याएँ हैं। दलाल हैं, नेतागण हैं और हैं भड़ुवे, मानो दोनों ध्रुव।

उदयप्रकाश **(दिल्ली की दीवार)** की कहानी इसी तरह के ताने-बाने से बुनी गई है। यहाँ वैसे पात्रों की अधिकता है, जिनमें स्मैकियों से लेकर ग्राहक को पटाने वाली सस्ती वेश्याओं तक का फैलाव है। यह कहानी उनके कहानी संग्रह **दत्ताश्रेय के दुख** की लंबी और उबाऊ कहानी है। यहाँ एक ऐतिहासिक पार्क वर्णित है, तो वहीं भिखमंगों, पागलों, कोढ़ियों, लूले-लंगड़ों, नशाबाजों, लावारिश और अनागरिक मनुष्यों का विवरण भी है। वह जीवंत पात्रों को अपनी तरह से रखते हैं और उनका औचित्य भी सिद्ध करते हैं। असद जैदी मानते हैं कि कहानियों के रूप में वह कुटीर उद्योग चलाते हैं। 'आचार्य की रजाई', 'साइकिल' और 'हत्या' अच्छी कहानियाँ हैं, जिनसे जीवन का सकारात्मक संदेश मिलता है। वहीं कमलेश्वर का मानना है कि सबको अपने धर्म, विश्वास, आस्था को बनाए रखना चाहिए क्योंकि वह उनके संस्कारों से जुड़ा है। "ईसाई हो तो ईसाई रहना, हिंदू हो तो हिंदू रहना। मुस्लिम हो तो मुस्लिम रहना, धर्म बदलने से आदमी को पराई संस्कृति को झेलना पड़ता है, जो हमें अलग-अलग टुकड़ों में बाँट देती है, फिर हमें चूसती है।" (आजादी मुबारक : कमलेश्वर)। उनका मानना है कि साहित्य को गगनचारी और कल्पनालोक का विहग नहीं बनकर आम जनता की जमीन पर उतरना पड़ेगा। "साहित्य शब्द-निर्मित द्वीपों में नहीं रह सकता। उसे सड़क और बाजार की पटरियों पर उतरकर आना पड़ेगा।" (समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर 2002, पृ.-129)।

हिडिंबा के गाँव (बटरोही) और दूसरा **अलास्का (अनीता राकेश)** में हमारी भावनाओं, द्वंद्वग्रस्त मानसिकता को अलग-अलग पात्रों की मनोदशा द्वारा व्यक्त किया गया है। अनीता राकेश की कहाननियों में व्यक्ति के अकेलेपन का अहसास तीव्र हुआ है। साथ ही हमारे आसपास जो रुग्ण है, गलित है, अस्तव्यस्त है रूढ़िग्रस्त है, उसके प्रति नकार का भाव भी उभरा है। इससे अनीता की कहानियों में संश्लिष्टता आई है, तो अहसास की तल्खी भी। 'हिडिंबा के गाँव' में हमारे समाज के कई प्रश्न उभरते हैं। गाँव के वर्णन के साथ जंगल, पोखर, पहाड़, मंदिर, गाय, बकरियों के चित्र उभरते हैं। साथ ही वहाँ की संस्कृति, परंपरा का भी बोध होता है। इसमें पहाड़ी क्षेत्र में सवर्ण-अवर्ण के मध्य सामाजिक संबंधों का पता चलता है। यहाँ इतिहास है, तो उसके साथ पहाड़ पर आकर बसने वाली जातियों का वर्णन भी। यहाँ सचमुच पहाड़ का अनकहा दर्द व्यक्त हुआ है और वहाँ बसनेवाली जातियों का व्योरा भी।

महिला-आरक्षण के कंधे पर सवार होकर कैसी-कैसी जाहिल औरतें, तैंतीस परसेंट आरक्षण का लाभ उठाकर सरकार और जनता का शोषण कर रही हैं, यह यहाँ ध्यातव्य है। महिलाओं का संकेंड सेक्स और गरीब होने के कारण कितना शोषण होता है, वह भी यहाँ द्रष्टव्य है। गरीब घर की महिला दहेज के अभाव में दुहेजू से ब्याही जाती हैं और प्रारंभ में ही उसकी नसबंदी करा दी जाती है ताकि उसका कोई वारिस संपत्ति का अधिकार न पा सके और न उस महिला का प्रेम पति के सिवा कहीं अन्यत्र विभाजित हो। यह प्रेम नहीं विवशता की परिणति है।

कथानायिका नीरा सोचती है कि पैसा बड़ी चीज है। बेटी का क्या? वह होती है किस्मत का कर्ज चाहे जैसे उतरे। राम सिंहासन बाबू जब वह कर्ज, बिना दाम, कौड़ी के उतारने के लिए तैयार हैं, तो भला वह क्यों चूकते। पहली बार ससुराल पहुँचने पर जेठानी के चरण छुए थे नीरा ने और उन्होंने आशीष दिया था: "बबुआ के जाँघे खिया।" अर्थात उनकी जाँघ के नीचे रहना (आशय, अक्टूबर 2004-2005 में **तैंतीस परसेंट : नीलिमा सिन्हा,** पृ.-45) अब नीरा घिस ही तो रही है रामसिंहासन बाबू की जाँघों के बीच। नीरा सोच रही है : "जिस दिन से नीरा का आपरेशन हुआ है, नीरा औरत की बजाय एक खोह भर होकर रह गई है, भयंकर काली भुतही खोह।.... रामसिंहासन बाबू को डर नहीं लगता इस भुतही खोह से?... राससिंहासन बाबू पिशाच है क्या?" (उपरिवत्, पृ.-54)। पार्टी कार्यालय में आकर नीरा को पहली बार यह अहसास हुआ है कि यहाँ न पति का भय है, न उनके जवान होते बेटों द्वारा पंकज की अम्मा कहलाने का। नीरा यह सब चाहती भी नहीं है। न वह किसी की अम्मा थी, न कभी बन सकती है। उसे अम्मा कहना कितना अपमानजक लगता है, यह नीरा ही बता सकती है। परिस्थितियाँ कैसी भी हों, वह क्या सदा नारी उपेक्षा के लिए पैदा की जाती हैं? काश, यह प्रश्न रामसिंहासन बाबू और समाज से पूछा जाता? नीरा के साथ ऐसी कई पिछड़ी महिलाएं हैं, जो राजनीतिक संरक्षण में यहाँ आकर हँसी का पात्र हो गई हैं पर उनमें सुधार की नहीं यथास्थिति की ही अधिक संभावनाएँ हैं।

आज के भौतिक युग में रिश्ते भी धन पर आधारित हैं -- टकसाल हैं। वहाँ केवल सिक्कों की खनखनाहट वाली भाषा सुनाई पड़ती है। इस हालत में सच्चा प्रेम, स्नेह दुर्लभ हो जाता है। भावनाएँ होती रहती हैं उत्तरोत्तर उपेक्षित। फिर वहाँ न रिश्तों में कोई ऊष्मा रह जाती है, न कोई गरिमा। **गुनहगार (लता अग्रवाल)** का नायक बचपन में पिता से अकारण पिटता रहता है। बड़ी निर्ममता से वह इसकी खबर लेते रहते हैं। संभव है उन्हें प्रसाद की पंक्तियाँ याद हों। -- "महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में पलता है।" इस बेरहमी से पिटे जाने की प्रतिक्रिया में बालक ने घर से पलायन कर बड़ा मुकाम हासिल किया और घर से दूर रहकर अपनी उपलब्धियों को घर तक पहुँचाता रहा। नाटक का पटाक्षेप आशातीत हुआ। कई वर्षों बाद उसका धनी बेटा उनके श्राद्ध में पहुँचा तो लौटते हुए उसे पिता के पत्रों का एक पुलिंदा मिला, जिसमें उन्होंने उसकी हर उपलब्धि पर शाबासी दी थी। यह पढ़कर नायक भले अपने को मानता हो गुनहगार, पर संभवतः वह उसका मृतक पिता के प्रति छद्म रवैया है। एक आदेश, "अब्बू नहीं गए बल्कि मेरी ताकत, मेरी चुनौती, मेरी जंग सब कुछ एक बार में खत्म हो गया-- जिंदगी एक गुनाह की तरह सीने में दम घोंट रही है।" (समावर्तन, मार्च 2015, उज्जैन में लता शर्मा की कहानी 'गुनहगार' पृ.-63)

निवृत्ति (शैलेन्द्र सागर) के कथारंभ में ही कहानीकार समकालीन सच की नब्ज पर ऊँगली रख देता है ? "भोगवाद और उत्सवधर्मिता के इस दौर में हर रिश्ते, समर्पित जीवन की प्रत्येक घटना, गतिविधि, भावना, आकांक्षा व स्वप्न के लिए एक दिन समर्पित है और उसे पूरी भव्यता और नव्यता से मनाने के नए-नए ढंग इजाद दिए जा रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आक्रामक प्रचार, प्रसार से चाहकर भी कोई बच नहीं पाता और उपभोक्तावाद अपनी पूरी नंगई के साथ समाज के हर वर्ग, श्रेणी या आय के अंदर गहरी पैठ बनाने में सफल हुआ है।" (हंस, जुलाई 2015, पृ.-16)। एक आई.ए.एस. अधिकारी के रिटायर होने पर विदेश में नौकरीपेशा उनका पुत्र उन्हें बड़ी शानदार पार्टी देने और उसमें उम्दा विदेशी शराब पेश करने का आग्रह करता है। कहानी में ठाठ-बाट का भी जीवंत वर्णन है।

सरप्राइज (ललिता यादव) में कभी पति-पत्नी

रह चुके दो व्यक्ति संयोग से ट्रेन के कंपार्टमेंट में आमने-सामने की बर्त पर मिलते हैं और स्वाभाविक रूप से कश-म-कश घिरने लगती है। बहुधा ऐसी हालत में अतीत राग बजता है। शिकवे-शिकायत चलते हैं और फिर किसी नाटकीय मोड़ पर कहानी का अंत हो जाता है। मुकेश वर्मा ने कहानी की पूर्व भूमिका या विषय-प्रवेश या उद्देश्य स्वरूप टिप्पणी की है - "सामान्य तौर पर भावनाओं के आवेग, उद्वेग में पुरानी यादों की कटु और तिक्त स्मृतियों को उभारने की चालू लेखकीय परंपराएं हैं। लेकिन लेखिका इन सबसे बचकर निकलती हुई एक व्यावहारिक स्थिति के उतार-चढ़ाव पर संयत रहती है।" (समावर्तन, अगस्त 2015 में मुकेश वर्मा की टिप्पणी)। ऐसा आदर्श मानवीय और व्यावहारिक अंत किसी पुराने असफल जोड़े का दुर्लभ है।

यहाँ एक नदी थी - (सुवास कुमार) संग्रह की शीर्षनामा कहानी है, जिसमें एक परिवार के चार पुश्तों की कथा के द्वारा एक गाँव के बनने-बिगड़ने और विचलने की कहानी है। यहाँ एक ऐसे परिवार की त्रासद कथा है, जिसमें पहली और तीसरी पीढ़ी अपने समय और समाज के यथास्थितिवाद से संघर्ष करती हुई मृत्यु का शिकार होती है। वहीं दूसरी ओर दूसरी और चौथी पीढ़ी यथास्थितिवाद से समझौता कर बेहतर जीवन जीने की जुगत में लगी रहती है। कहानीकार की असली चिंता गाँव की मानसकिता की है, जो जड़वत रहती है। सहना और चुप रहना जानती है। सरकार से कभी अपने अधिकार और देय के लिए शिकायत नहीं करती। जनता में असीम ताकत है, काश, इसे वह जान पाती और आजमाती, यही चिंता लेखक की है। वह जनता को जगाकर उसे उसका हक दिलाने के पक्षधर हैं। जलमुर्गियों का शिकार (दूधनाथ सिंह) में एक धूसर और बदरंग दुनिया का यथार्थ है। यहाँ राजनीति में क्रूरता और अमानवीयता की मारक छवियाँ हैं तो गहन संवेदना के मार्मिक क्षण भी। कालीचरण कहाँ है? राजनीति पर अपराध माफिया को दिखाती है। यों यह कहानी हिंसा और सस्पेंस से बुनी हुई है फिर भी यह पाठक को आतंकित नहीं करके उस अंधेरी और अनैतिक दुनिया के प्रति घृणा पैदा करती है। 'इज्जत' समाज की तलहट में जीवन गुजारनेवाली कन्नी की मार्मिक कहानी है, जो झुग्गी बस्ती में संघरष भरा जीवन व्यतीत करती है। अपनी माँ की मृत्यु पर झूठा रुदन करने वाली कन्नी का बच्चा कड़ी दुपहरी में अपनी इज्जत बचाने के संघर्ष में मर जाता है और फिर वह सचमुच धाड़ मारकर होने लगती है। **'जलमुर्गियों का शिकार':** में दो भाई हैं। एक हिंसा से पाता है तृप्ति और आनंद तो दूसरा त्रास अनुभव करता है।

'अम्माएँ' बुंदेलखंड के ग्रामीण जीवन के यथार्थ का हाहाकारी पक्ष प्रस्तुत करती है। हर साल पड़ने वाले अकाल के कारण सारे पुरुष घर से भाग गए हैं और औरतों की स्थिति इतनी दयनीय है कि एक ही साड़ी रहने के कारण वे बारी-बारी से बाहर निकलती हैं। इक्कीसवीं सदी में यह आदिम अवस्था हमारे चहकते लोकतंत्र पर प्रश्नचिह्न है। कितना गिनाया जाए, क्या-क्या कहा जाए। देश की खुशियाली तरक्की का राग अलापना और सत्ता पर बहुमत के गणित से काबिज होना एक बात है और जनता के साथ हमदर्दी और उसे यथास्थिति से ऊपर उठाना दूसरी बात। कहानीकार तो युग की नब्ज पहचानते हैं। जैनेन्द्र कुमार के शब्दों में "युग की प्रत्येक अगली लहर के आगे जो कुछ लहरा रहा है, हमें वही चाहिए, हमें पुराना कुछ नहीं चाहिए।" (समय और हम)। कहानीकारों ने युग की विसंगतियों, विडंबनाओं और यथास्थिति की अंतर्यात्रा करते हुए संकेत दिया है कि सब मिलाकर हमारी स्थिति दयनीय ही है। भले ही हम सर्वजन हितकारी योजनाओं के गीत गाते नहीं अघाएँ। समकालीन कहानी ने युग की नब्ज पहचानी है और दुःखती रगों को छूकर हमें जगाने का प्रयास किया है।

वृन्दावन, राजेन्द्र पथ
धनबाद-826001, झारखण्ड
मो. - 9065197429

●

अल्फा-बीटा-गामा : संवेदना का नवीन आख्यान

मिन्नु जोसेफ

शोध सार : इन्सान इतना आत्मकेन्द्रित, परिवार-केन्द्रित हो गया है कि वह स्वयं के अलावा किसी को स्वीकार ही नहीं कर पाता। असंवेदनशीलता इतनी कि हम मानवेतर प्राणियों से छुटकारा पाना चाहते हैं। जैसे - कुत्ता, जो हमारी वफादारी का प्रतीक और सदियों से मानव का सहयात्री रहा है, हमारी स्मृतियों से बाहर होता जा रहा है। नासिरा शर्मा का उपन्यासा 'अल्फा-बीटा-गामा' इन विस्मृतियों को चुनौती देता है। कुत्तों के स्थान को हमने सीमित कर दिया है या उनके स्थानों पर कब्जा कर लिया है। यह उपन्यास इन समस्याओं को अभिव्यक्ति देता है। मानवेत्तर प्राणियों के अस्तित्वबोध को पहली बार नासिरा शर्मा ने अपने इस उपन्यास में गहन संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। *(बीज शब्द :* जानवर - मानवेत्तर प्राणी - कुत्ते - इनसान - संवेदना - संघर्ष - कोरोना - लॉकडाउन - चौकीदारी - पशु - मनोविज्ञान।)।

मानवेतर प्राणी भी हमारे समाज के अभिन्न अंग हैं। उनका भी इस संसार पर उतना ही अधिकार है जितना मानव का। अल्फा-बीटा-गामा, जो 2022 में प्रकाशित हुआ, हिंदी साहित्य में अब तक के उपन्यासों से बिल्कुल अलग विषयवस्तु पर आधारित है। इस उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र कुत्ते हैं। इस उपन्यास का मुख्य संदेश यह है कि यह जगत केवल मानव का नहीं, बल्कि जानवरों का भी है। जानवरों पर लिखने के लिए लेखक में अत्यधिक संवेदनशीलता आवश्यक होती है। नासिरा शर्मा ने कुत्तों के मनोविज्ञान को गहराई से समझकर इस उपन्यास का सृजन किया है। इस उपन्यास को पूरी तरह से समझने के लिए जानवरों के मनोविज्ञान की समझ होना महत्वपूर्ण है। यह उपन्यास जानवरों और उनके जीव-जगत को जानने के इच्छुक पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। यदि पाठक जानवरों में रुचि रखते हैं, तो उन्हें उपन्यास को पढ़ते समयें यह महसूस होगा कि इन कुत्तों को कहीं-न-कहीं, किसी न किसी समय देखा या अनुभव किया है। यह उपन्यास कुत्तों पर केंद्रित होते हुए भी वर्तमान भारत की कई राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं की झलक भी प्रस्तुत करता है। साहित्य में जानवरों को सदियों से प्रतीकों के रूप में इस्तेमाल किया गया है। लेकिन इस उपन्यास में जानवरों को जानवर के रूप में और उनकी समस्याओं को उनके दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में एक गली और वहाँ

रहने वाले हर वर्ग के मनुष्यों और कुत्तों के संबंधों का चित्रण है। साथ ही, उनके बीच टकराव उत्पन्न करने वाली घटनाओं को उजागर किया गया है।

बहुत कम लोग जानते हैं कि पशु विज्ञान के आधार पर कुत्तों के चार प्रकार होते हैं- **1.** घरेलू कुत्ते (Domestic Dogs): ये वही कुत्ते हैं जिन्हे हम अपने घरों में पालते हैं। **2.** फैमिली कुत्ते (Family Dogs) : ये कुत्ते घरों के आस-पास मंडराते रहते हैं और उन घरों पर आश्रित होते हैं। **3.** कम्युनिटी डॉग (Community Dogs) : ये कुत्ते एक समुदाय के भीतर रहते हैं और वहीं से अपना गुजारा करते हैं। **4.** स्ट्रे डॉग (Stray Dogs) : ये कुत्ते स्वतंत्र होते हैं और आमतौर पर मानव संपर्क के बिना जीवित रहते हैं। पहले तीन प्रकार के कुत्ते मानव संपर्क के बिना जीवित नहीं रह सकते। लेकिन आमतौर पर दूसरे, तीसरे और चौथे प्रकार के कुत्तों को लोग "स्ट्रे डॉग" कहते हैं, जिससे इनके बीच का अंतर नहीं समझ आता। दूसरे और तीसरे प्रकार के कुत्ते भोजन और प्रेम के बदले उस क्षेत्र की चौकीदारी करते हैं जहाँ रहते हैं। वहीं चौथे प्रकार के कुत्ते, जो आक्रामक होते हैं, अक्सर अतीत के किसी आघात (ट्रॉमा) या इंसानों के बुरे व्यवहार के कारण उन्हें अपना शत्रु मानते हैं। इन कुत्तों का उपन्यास अल्फा-बीटा-गामा में विस्तार से वर्णन किया गया है।

उपन्यास का शीर्षक "अल्फा-बीटा-गामा" पुरुष-सिद्धांतों (Male Archetypes) पर आधारित है, जो विशेष रूप से जानवरों, खासकर भेड़ियों के व्यवहार के अध्ययन से निकला है। कुत्ते भूरे भेड़ियों के वंशज हैं। यह अवधारणा लोगों को उनके व्यक्तित्व और स्वभाव को समझाने का एक तरीका है। अल्फा, बीटा, गामा, ओमेगा, सिग्मा प्राणी समूहों का व्यवहार दर्शाते हैं। अल्फा वाले आत्मविश्वासी नेता होते हैं, बीटा उनका अनुसरण करने वाले और गामा अल्फा बनने की कोशिश करने वाले होते हैं। उपन्यास यह दिखाता है कि जैसे कुत्ते हैं, वैसे ही मानव हैं, दोनों के स्वाभव और व्यवहार में गहरी समानता है। यह संशोधन उपन्यास के पाठ को अधिक स्पष्ट, व्यवस्थित और व्याकरणिक रूप से सटीक बनाता है।

पशु चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भारत अभी भी बहुत पीछे हैं। आज भी कई पशु-रगों के लिए हमारे पास दवाएं उपलब्ध नहीं हैं। यह पशु चिकित्सा क्षेत्र की एक बड़ी कमजोरी है। इसके अलावा, कई मिथ्या धाराणाओं ने मानव और जानवरों के संबंधों में दरार उत्पन्न की है। समाज में लोगों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कुछ लोग कुत्तों से प्यार करते हैं और उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं। वहीं, कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने पालतू कुत्तों को प्यार करते हैं, लेकिन बाहर के सामूदायिक कुत्तों (कम्युनिटी डॉग्स) से नफरत और घृणा करते हैं। ऐसे लोगों के लिए विदेशी नस्ल के कुत्ते ही उनकी प्रतिष्ठा और शोहरत को बढ़ा सकते हैं, जबकि देशी कुत्तों की भी अपनी विशेषताएं और खूबियां हैं। मानव, जो स्वयं भेदभावपूर्ण मानसिकता के साथ जीता है, कुत्तों के बीच भी भेदभाव करता है। उपन्यास का एक पात्र ब्रिगेडियर, अपने रॉटवीलर कुत्ते "बुलेट" और देशी कुत्तों को अलग-अलग नजरिए से देखता है। यह दिखाता है कि मनुष्य की भेदभाव पर आधारित मानसकिता कैसे काम करती है। नस्ल के आधार पर वह न केवल कुत्तों, बल्कि अन्य जानवरों, जैसे बिल्लियों के प्रति भी भिन्न व्यवहार करता है। उपन्यास में यह भी कहा गया है कि "कुत्ते न तो अखबार पढ़ते हैं और न ही समाचार देखते हैं।" वे दुनिया को अपने नजरिए से देखते हैं। उपन्यास में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि कुत्तों का इंसानों के प्रति क्या दृष्टिकोण हो सकता है और क्या होना चाहिए। जैसे हम कुत्तों को "चौपाया" कहते हैं, उसी प्रकार उपन्यास के कुत्ते इंसानों को "दोपाया" कहते हैं। इसका अर्थ है कि जैसे इंसानों के पास कुत्तों के लिए कोई विशेष शब्द नहीं है, वैसे ही कुत्तों के पास भी इंसानों के लिए कोई विशेष शब्द नहीं है। उनके लिए इंसान एक अलग प्रजाति है।

ब्रिगेडियर लाल एक फौजी थे, जो अनुशासन में अटूट विश्वास रखते थे। वे खुद को दूसरों से अलग और श्रेष्ठ मानते थे, यानी वे सिविलियंस (साधारण नागरिकों) को अपने से कमतर और खुद को विशिष्ट मानते थे। उनका व्यवहार और सोच इसी भेदभाव पर आधारित था। उनके बेटे का कुत्ता "बुलेट" उनका सबसे करीबी साथी था। बुलेट कैंसर से पीड़ित था, और ब्रिगेडियर उसका बहुत ध्यान रखते थे। हालांकि, ब्रिगेडियर एक पशु-प्रेमी (एनिमल लवर) नहीं थे, क्योंकि वे देशी कुत्तों से गहरी घृणा करते थे। उपन्यास के आरंभ में ही देशी कुत्तों के प्रति उनके मन में घृणा को उजागर किया गया है। उनके अनुसार, देशी कुत्ते और उनसे जुड़े गली के लोग 'कीटाणु के वाहक' हैं। उनका कहना था, "ये सिविलियंस, न अनुशासन है इनमें, न सफाई से रहते हैं। जिधर देखो, ढेरों घूमते कुत्ते, जो अपने शरीर में कीटाणु लेकर फिरते हैं।... कब समझेंगे ये हलवाई और ढाबे वाले कि ये देसी कुत्ते बीमारी व कीटाणु के वाहक हैं? सोच ऐसी कि जैकरसल को देसी कुत्ते से मिला रहे हैं।"[1] ब्रिगेडियर बहुसंख्यक भारतीयों की तरह देशी कुत्तों से नफरत करते थे। उनके अनुसार, गली में रहने वाले सिविलियंस और आवारा कुत्तों में कोई अंतर नहीं था। उनके दृष्टिकोण में दोनों ही अनुशासन और सफाई से वंचित थे। उनकी यह घृणा तब सामने आई जब गली के पाँच चौकीदार कुत्तों ने बुलेट को घेर लिया और भौंकने लगे। ब्रिगेडियर ने गुस्से में छड़ी उठाकर उन पाँचों कुत्तों पर हमला किया। इस घटना ने पूरे कुत्ते समाज को झकझोर कर रख दिया। गली के दो कुत्ते, चिरकुट और लेंडी, इस हमले से डरकर एक नए बन रहे मकान में जाकर छिप गए। वे वहाँ दो दिन तक भूखे-प्यासे छिपे रहे। आखिरकार, जब भूख असहनीय हो गई, दो दोनों हिम्मत करके बाहर निकले और ढाबे के बाहर रखे बर्तन का धोवन पी लिया। पाँच चौकीदार कुत्तों में से एक कुत्ता इस हमले में बच नहीं पाया।

गली का कूड़ेदान, जिसे गली के कुत्ते "डॉग होटल" कहते थे, उनके जीवनयापन का मुख्य सहारा था। लेकिन अचानक सफाई अभियान के चलते इस कूड़ेदान को साफ कर दिया गया। इस अप्रत्याशित बदलाव ने कुत्तों और सूअरों जैसे बेसहारा जानवरों की स्थिति को बिगाड़ दिया, क्योंकि ये जानवर इसी कूड़ेदान से अपनी भूख मिटाते थे। गाय, बकरियाँ जंगल से अपनी भूख मिटा सकते थे, "मगर प्रश्न तो सामने यह था कि कुत्ते, बकरियाँ नहीं थे।"[2] इंसानों की तरह बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार कुत्ते आसानी से अनुकूल नहीं हो पाते।

कुत्तों और बिल्लियों का रोना अक्सर अपशकुन माना जाता है। अगर कोई कुत्ता या कुतिया किसी गाड़ी के नीचे आ जाते हैं या किसी दुर्घटना का शिकार होते हैं, तो उनकी कराह इनसान के लिए सिर्फ भौंकने की आवाज होती है। लेकिन लेखक के अनुसार, भौंकना कुत्तों की भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है। एक घटना में, एक कुतिया का बच्चा स्कूटर के नीचे दबकर मर गया। इस दर्दनाक घटना पर उसका करुण विलाप सुनकर गली के सभी कुत्तों ने भौंकना शुरू कर दिया। इससे परेशान होकर तिवारी जी ने फ्रिज की सारी बर्फ एक बाल्टी में भरकर उन कुत्तों पर उड़ेल दी। यह सर्दी का मौसम था, और इस घटना ने कुत्तों के भीतर गुस्से को और भड़का दिया, विशेष रूप से जवान कुत्तों में बदले की आग सुलगने लगी। चौकीदार कुत्तों में से एक की मृत्यु ने इस गुस्से को हद से ज्यादा बढ़ा दिया। "सबने ठान ली थी कि अब इन दो पैर वालों से इस अपमान का बदलना चुन-चुनकर लेना है-- अपनी भूख का, अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का और भौंकने पर अंकुश लगाने का।"[3] दूसरी ओर, खान साहब का पारसी बिल्ला जमशेद, जो हीट के समय विशेष प्रकार की आवाज निकालता था, अंधविश्वासों के कारण मारा गया।

आसपास के लोग इसे अपशकुन मानकर बिल्ले को मारने के लिए उतावले हो गए। इंसान, जो खुद को सबसे समझदार प्राणी मानता है, अंधविश्वासों के कारण जानवरों पर अत्याचार करने से भी नहीं हिचकता। इंसानों के लिए, कुत्तों की भूख के लिए की गई फरियाद भी उनको अपशकुन लगती है।

हमारे समाज में जानवरों को हिस्सेदारी का कोई विशेष ख्याल नहीं रखा जाता। यही कारण है कि गली में सफाई अभियान अधिक दिनों तक नहीं चल पाया, और जल्द ही "डॉग होटल" (कूड़ेदान) पहले की तरह कचरे से भर गया। डॉग होटल में एक बूढ़ी कुतिया को प्लास्टिक थैले के अन्दर से इन्सानी बच्चा मिलता है। बदले की आग से अंधे लड़ाकू जवान कुत्ते इस बच्चे को मिल बाँटकर खाने के लिए कहते हैं और इसके लिए दूसरे कुत्तों से लड़ाई भी करते हैं। लेकिन किसी न किसी प्रकार चिरकुट और लेंडी मिलकर बच्चे को कार्तिक के एनिमल फार्स्ट तक सुरक्षित पहुंचाते हैं। इस घटना का पत्रों और टेलीविजन के द्वारा इतना प्रचार हुआ कि स्कूलों और सोसाइटी में बहुत सारे जानवरों से सम्बन्धित विदेशी फिल्म दिखाना शुरू किया गया। यह है हमारी संवेदना का अगला पक्ष जहां हमें करना कुछ और है, करते कुछ और हैं। लेकिन वहां के मजदूर विदेशी कुत्तों की बजाय उन्हीं कुत्तों को देखना चाहते थे जो उनके आसपास रहते थे। देखने वालों की संख्या कम हुई तो कमेटी वालों ने बैनरों में इस प्रकार लिखा कि "महाभारत में युधिष्ठिर का जो अंत तक साथ निभाता है, वह भी एक कुत्ता था"[4] यह देखकर मजदूर फिल्म देखने के लिए पहुंच जाते हैं... एक सच यह है कि धरती किसी एक की नहीं है। जीव-जन्तु, इनसान, जानवर, नदी, पर्वत, समुद्र यहाँ हैं, उसमें हमारी बराबर की हिस्सेदारी है, मगर इन्सान ने अपनी भागीदारी बढ़ा ली है जो दूसरों के लिए दुःख का कारण बनती है।"[5] उन एनिमल बर्कर्स ने काफी हद तक जनता को जागृत किया। आज भी बहुसंख्यक भारतीयों को यह नहीं पता कि देशी कुत्तों की भी एक ब्रीड है जिसका नाम 'इंडियन परिया' है। इस ब्रीड की कई खूबियाँ हैं। इसके अलावा कई भारतीय कुत्ते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अग्रणीय हैं। उपन्यास के एक अंश में ढाबे वाले कुत्तों पर बात कर रहे थे तो कुछ मजदूर यह मानने के लिए भी तैयार नहीं थे कि राजपालयम एक भारतीय नस्ल का कुत्ता है।

गुस्से में अंधे होकर गली के जवान लड़ाकू कुत्तों ने तिवारी जी के पूरे परिवार को काट लिया। लेकिन इसका परिणाम भयंकर हुआ। सभी कुत्ते जो इन सबसे अनजान थे मारे गये। "पहले बीट पुलिस से बातचीत हुई और अमावस्या की रात तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार दर्जन भर कुत्तों को पटाखों की आवाज के साथ इनकाउंटर कर दिया गया। लाशों को टेम्पो में भरकर जंगल की तरफ गहरी चट्टानों के बीच फिंकवा दिया गया। पूरे मोहल्ले के कुत्ते तो खत्म नहीं हुए, मगर गली के आस-पास के कुत्तों को साफ कर दिलों में शांति छा गई कि अब उनकी फैमली सेफ हो गई।"[6] इंसान को रेबीज होने के डर मात्र से इतने जानवरों को मार फेंकना भारत में एक आम बात है।

हमारी योजनाओं तक में हमें इन्हें स्थान नहीं देते। हम इंसान, सिर्फ इंसान के लिए योजनाएं बनाते हैं। दिन-ब-दिन हम विकास की नई-नई दिशाएँ ढूंढ निकाले जा रहे हैं जबकि मानवेतर साथियों को विकास के पड़ाव में कहीं दूर छोड़ दिया है। मानवेतर समाज और मानव समाज को एक साथ रहने के लिए कुत्तों को समय पर टीका लगाना जरूरी है। कुत्तों के लिए जो बेहतरीन अस्पताल मौजूद हैं उन्हें केवल उच्च वर्ग ही अफोर्ड कर पाते हैं। सड़क पर आवारा घूमने वाले कुत्तों को टीका लगाने का कानून होने के बावजूद भी सरकार द्वारा इसके लिए कोई पद्धति या कार्यक्रम उपलब्ध नहीं किया गया है। देसी कुत्तों की आबादी रोकने के लिए इनका ऑपरेशन किया जाता है जबकि विदेशी कुत्तों के लिये कोई पाबंदी नहीं है। इनका एक-एक पिल्ला लाखों में

बिकते हैं, मन भरने के बाद इन्हें भी सड़कों पर छोड़ दिया जाता है। जबकि कुत्तों को पालना एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हमारे देश में ज्यादातर बच्चों के लिए घर के पालतू जानवर खिलौने के समान हैं। बहुत ही कम लोग बच्चों को यह नहीं सिखाते हैं कि ये मानवेतर प्राणी भी इस दुनिया के उतने ही हकदार हैं जितने हम हैं। उपन्यास में एक ऐसा दृश्य है जहाँ कुत्तों के पिल्ले गन्दी नाली के ठंडे पानी में गिरकर छटपटा रहे थे। "चलते-चलते सोए-लेटे कुत्ते को ठोकरें मारना या चलते हुए कुत्तों को पीछे से लात घुमाकर मारना किशोरों की शरारतों में शामिल था, मगर किसी भी बन्दे का यह कर्तव्य नहीं बनता था कि एक निरीह जीव को बाहर निकाल दे।"[7] हालात बहुत बदल गये हैं। मानव को न अपनों की फिक्र है न अपने आसपास रहने वाले जीव-जन्तुओं की।

इतिहास साक्षी है कि सदियों से कुत्ता इन्सान का सहयात्री रहा है। दोनों ने एक साथ बहुत कुछ बनते बिगड़ते देखा है। फिर भी इनसान इन कुत्तों को अपनी हैसियत से अलग घृणा भरी दृष्टि से देखते हैं। इन्सान की साफ-सफाई की कमी अन्य जीव-जन्तुओं पर भी असर डालती है। प्लास्टिक जैसे खतरनाक पदार्थों के कारण हर साल हजारों जानवरों की मृत्यु होती है। यह उपन्यास कुत्तों की आजादी के ख्याल का भी बयान करता है। मोती एक आजाद ख्याल का कुत्ता है जो किसी भी प्रकार के बंधन को सहने के लिए तैयार नहीं है। वह दुम हिलाकर किसी के भी पीछे नहीं भागता था, न गंदा खाना खाता था। कुत्तों में भी कई स्वभाव वाले होते हैं, इस पर उपन्यासकार लिखते हैं - "हर कुत्ता वफादार, निष्ठावान, चुस्त-चतुर और तेज बुद्धि वाला नहीं होता है। इंसानों की तरह उनमें भी गुण और अवगुणों की अलग-अलग डिग्री होती है।"[8]

कार्तिक पहले नेवी में थे। प्री रिटायरमेंट लेकर स्ट्रीट डॉग्स और देसी कुत्तों की सेवा में 'एनिमल फार्स्ट' नामक एक संस्था चला रहे थे। ब्रिगेडियर लाल को यह जानकर धक्का लगा कि देश की रखवाली करने वाला एक फौजी सड़क छाप कुत्तों के बीच समय बर्बाद कर रहा है। क्योंकि उनकी दृष्टि में ये कुत्ते समाज और देश के लिए किसी काम के नहीं थे। डॉ. शशिधर और कार्तिक बिना किसी आशा के इन सड़क छाप आवार कुत्तों की देखभाल कर रहे थे।

शाहीन बाग धरना, दिल्ली के दंगे और लॉकडाउन तीनों घटनाओं का प्रभाव उपन्यास में है। कोरोना के समय में लॉकडाउन का प्रभाव कुत्ते और इन्सान के लिए किस तरह का था? इन घटनाओं के कारण कुत्तों पर क्या असर पड़ा है, इस पर भी उपन्यास में चर्चा है। कोरोना समय की अनेक घटनाओं का बेहद संवेदना के साथ उल्लेख उपन्यास में है। इसलिए यह महज कुत्तों पर आधारित उपन्यास नहीं है। इसमें कोरोना काल की दुःखद घटनाओं पर भी टिपण्णी की गई है। कोरोना-समय की राजनीतिक स्थिति पर व्यंग्य करते हुए लेखिका ने लिखा है कि "जिस आर्थिक संकट से देश और देशवासी गुजर रहे थे, उस संकट काल में भी चुनाव हुआ।... जब समय नेकी और इबादत का होना चाहिए, तब सियासत के खेल बड़ी मुस्तैदी से खेले जा रहे थे।"[9] कोरोन और लॉकडाउन की भीषणता और कष्ट से पीड़ित समाज में सबसे ज्यादा कुत्ते और सामान्य मजदूरों के वर्ग ही प्रमुख थे। मजदूर तो यह जानते थे कि आखिरकार क्या हुआ है। कुत्ते सिर्फ यही देखते थे कि अचानक सब कुछ बंद हुआ-- होटल, ढाबे, दुकानें... सब कुछ। भूख मिटाने का कोई चारा नहीं था। लोग घर से बाहर नहीं निकलते थे, सड़कों पर गाड़ियों के शोर नहीं थे, लोग चुप-चुप कर बाहर निकलते थे। लेकिन एक दिन अचानक इंसानों ने ताली जोर-जोर से पीट कर बाहर जुलूस निकाला और जोर-जोर से "कोरोना गो" के नारे लगाना शुरू किया। तभी अचानक अंधेरा छा जाता है फिर दीपों से सब कुछ जगमगा उठता है। कुत्ते जानते थे कि दीवाली तो नहीं थी। "पांच मिनट का यह शोर उनके लिए उतना ही जान

लेवा था जितना उड़ती चिड़ियों के लिए था। बिल्लियाँ, सूअर, गाय-सब अपनी जगहों पर थम-से गए। ध्वनि प्रदूषण ने आसमान सिर पर उठा लिया। कुछ उन्माद में आकर डीजे की तेज आवाज पर बाहर निकल नाचने लगे। किस बात का उत्सव था? इस उत्साह से भयभीत कुत्ते कुछ समझ न सके। जब खुशियाँ मनाकर लोग घरों में चले गए तो कुत्ते-बिल्ली बाहर निकले और घरों में जलती बिजली को देखर समझ नहीं पाए कि यह कौन सी दीवाली है, जिसमें आतिशबाजी की जगह खुद इनसान अनार और पटाखे बन गए हैं?"[10] आखिरकार वे इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि शायद इंसान पागल हो गया है। कोरोना के समय कुछ लोग यह सोचने लगे कि कोरोना कुत्तों से फैलता है। वे भारी-भारी मात्रा में भोजन में जहर मिलाकर इन कुत्तों को खिलाने लगे। भूख से तड़पते कुत्ते भोजन देखकर टूट पड़ते थे। भोजन में जहर मिलाने वाली क्रूरतम प्रवृत्ति केवल इन्सान ही कर सकते हैं। इस समय देश भर में ऐसी कई घटनाएं हुई थीं। कोरोना के वक्त कुत्ते ही नहीं बल्कि इन्सान भी भूख से तड़प रहे थे। एक ऐसी दिल दहलाने वाली घटना का जिक्र उपन्यास में है। जहाँ एक आदमी भूख से तड़पकर मर जाता है, तो उसके अंतिम समय तक तीन कुत्ते ही उसके साथ थे। शायद हमारे देश में ऐसी कितनी घटनाएँ हुई होंगी जिनकी खबरों से बाहर की दुनिया बेखबर रही। हमारे यहाँ ऐसे लोग भी हैं जो खुद कुत्तों से नफरत करते हैं और यही चाहते हैं कि दूसरे भी कुत्तों से इस तरह का व्यवहार करें। ऐसे लोग सड़क के कुत्तों को खाना खिलाने के सख्त खिलाफ हैं। इंडिया के कई हिस्सों पर ऐसे कानून भी लागू हैं। जैसे कि सोसाइटी में स्ट्रे डॉग्स को खिलाना कानूनन अपराध है। भूखे को खाना खिलाना किस तरह से अपराध हो सकता है?

कोरोना के समय मानव जाति की अन्य जीवों से घृणा पूरी तरह बाहर आयी। इंफेक्शन के डर के मारे लोगों ने घर के आसपास एक परिंदे को भी रहने नहीं दिया। कुछ लोगों ने आसपास के सभी पेड़ों को और पेड़ों के घोंसलों को नष्ट कर दिया और बाकी जानवरों को जहर देकर मार डाला। "उन विदेशी कुत्तों को लाखों में खरीदने वाले भी एक एकाएक अपना विवेक खो बैठे और बिस्तर पर साथ बिठाने वाले कुत्ते-बिल्लियों को बोरों में भरकर छोड़ आए-नाले और नहरों में।"[11] भारत में विदेशी नस्ल के कुत्तों की हालत भी अच्छी नहीं है। बीमार होने पर पालने में दिक्कत होने पर लोग इन कुत्तों को घर से दूर कहीं फेंक देते हैं। इस पर लेखिका लिखती हैं कि "यह विडंबना ही तो है कि बरसों से साथ रहने के बावजूद इनसान जानवरों से डरता है और जानवर इनसानों से।"[12] स्वार्थता ने मानव को हर तरफ से असंवदेनशील बना दिया है।

कुत्ते हमारी सामाजिक घटनाओं के चश्मदीद गवाह होते हैं। पूर्वी दिल्ली में हुए एक सांप्रदायिक दंगे के चलते दो कुत्ते पागल हो जाते हैं और अपने मालिक को मारते देखकर एक गर्भवती कुतिया का गर्भपात हो जाता है। कुछ कुत्ते भयभीत होकर वहां से दौड़कर अन्य मोहल्ले में आ बैठते हैं और वहां के कुत्तों से कहते हैं कि "हम भी लड़ते हैं, अपनी गली में दूसरे को घुसने नहीं देते हैं। परंतु इस तरह की दोपायों की आपसी मुठभेड़ों के किस्से मेरे पिता भी सुनाते थे, मगर जब खुद अपनी आंखों से देखो तो उसका असर गहरा होता है।"[13] आश्चर्य की बात यह है कि इन्सान को अन्य प्राणियों से भी प्यार नहीं है और खुद इनसानों से भी प्रेम नहीं है।

हाल ही में भारत में G20 के दौरान कई लोगों को अपने स्थान से विस्थापित किया गया। गलियों में रहने वाले लोगों को वहां से हटाया गया। गलियों को ऊँची-ऊँची दीवारों से ढक दिया गया। बहुत सारे कुत्तों को पकड़कर उन्हें भी उनके स्थान से हटाया गया। इनमें से बहुत संख्या में कुत्तों को मारे जाने की खबर बाहर आई।[14] यह सब इसलिए किया गया ताकि उस जगह को सुन्दर दिखाया जा सके। इसी

तरह की एक घटना का जिक्र उपन्यास में भी है। भारत में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप के दौरे के दौरान कई कुत्तों को उनके स्थान से विस्थापित किया जाता है जिसके कारण पिल्ले अपनी माँ से अलग हो जाते हैं और कइयों को मार दिया जाता है। मानव प्रगति के नाम पर अन्य प्राणियों और मानव जातियों के साथ कुछ भी करने के लिए उतारू हो गया है।

उपन्यास के अंत तक आते-आते, ब्रिगेडियर लाल जैसे अनुशासन पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति, बुलेट की मौत के बाद कार्तिक और डॉ. शशिधर के प्रभाव से देशी कुत्तों के बीच रहकर उनकी समस्याओं को समझते हैं और अपनी राय व दृष्टि बदलते हैं। वे अपनी सारी सम्पत्ति देशी कुत्तों की सेवा के लिए उपयोग करने हेतु अनेक पद्धतियों का आविष्कार करते हैं।

अनुच्छेद 51(ए) के अनुसार जीवित प्राणी के प्रति सहानुभूति रखना भारत के सभी नागरिकों का मूल कर्तव्य है। 2009 में पारित 2013 में लागू हुए कानून के अनुसार सड़क के कुत्तों को मारना या उन्हें अपनी जगह से विस्थापित करना कानूनन दंडनीय जुर्म है। इन कुत्तों को बधिया करने के कुछ ही घंटों के बाद आवारा छोड़ दिया जाता है। इसलिए आज भी बहुत सारे कुत्ते इन्फेक्शन के कारण मर जाते हैं। यह क्रुएलिटी सिर्फ मानव ही करते हैं। कुत्तों के बिना इस दुनिया की कल्पना भी कितनी दुखद है, सिर्फ और सिर्फ इंसान की कामना बेहद कष्टप्रद है। उपन्यास का अन्त पाठक को सालों पहले की एक रचना 'पूस की रात' कहानी की याद दिलाता है जहाँ हल्कू जबरे को कस के पकड़ कर सोता हुआ दर्शनीय है। कहानी में जबरा और हल्कू के बीच एक आत्मीय सम्बन्ध है। "ऐसी अनोखी दोस्ती ने उसकी रूह के सब दरवाजे खोल दिए थे। उसका एक-एक जर्रा हकीकी रौशनी से मुनव्वर हो गया था।"[15] यह मानव और कुत्ते के बीच के सम्बन्ध का दस्तावेजीकरण करने वाली शुरुआती रचनाओं में एक है। उसी परम्परा का अगला और विस्तृत दास्तावेज है अल्फा-बीटा-गामा। इस उपन्यास के अंत में भी ठीक उसी प्रकार का एक दृश्य है जहाँ मोती नामक कुत्ता एक आम मजदूर के साथ लिपटकर सो रहा है। दोनों अपने परिवार से दूर हैं, भूखे हैं और दुखी भी हैं। फिर भी सर्दी के मौसम ने दोनों को एक दूसरे का सहारा बनाया।

निष्कर्ष : जानवरों से सम्बन्धित बहुत गहरी बातों को बेहद कुशलता के साथ नासिरा जी ने अपने इस उपन्यास में बुन रखा है। बिना किसी पूर्वाग्रह के साथ पढ़ने से ही पाठक मुद्दे के तह तक पहुँच पायेंगे। शायद पाठक के सोचने का अन्दाज भी बदल जाएगा और वह इस उपन्यास से अंदर से समृद्ध भी हो जाएगा। प्रचलित साहित्य में इस तरह का साहित्य न के बराबर है। लोग विदेशी कुत्तों के पीछे भाग रहे हैं। उपन्यास पाठक के सामने यह सन्देश रखता है कि कुत्ते सिर्फ हमारे शौक पूरा करने के लिए नहीं हैं। जिस तरह मानव उनके साथ प्यार करते हैं और जुड़ते हैं उसी प्रकार कुत्ते भी मानव से प्यार करते हैं और जुड़ते हैं। उपन्यास में कुत्तों की समस्याओं के जरिए मानव समाज की असंवेदनशीलता को बयान किया गया है।

सन्दर्भ

1. नासिरा शर्मा, अल्फा-बीटा-गामा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2022, पृ.-10-11। **2.** वही, पृ.-17। **3.** वही, पृ.-19। **4.** वही, पृ.-101। **5.** वही, पृ.-101-102। **6.** वही, पृ.-50। **7.** वही, पृ.-29। **8.** वही, पृ.-176-77। **9.** वही, पृ.-206। **10.** वही, पृ.-156-57। **11.** वही, पृ.-189। **12.** वही, पृ.-51। **13.** वही, पृ.-300।

14. hrttp://weather.com/en-IN/india/news/news/2023-09-08-illegal-stray-dog-removal-from-delhi-streets-ahead-of-g20.

15. https://www.rekhta.org/stories/poos-ki-raat-premchand-stories?lang=hi.

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
केरल-682022
मो. : 7456585177
ई-मेल - minnuj96@gmail.com

कश्मीरी संत कवयित्री लल्लेश्वरी की दार्शनिक चेतना

डॉ. अमरसिंह वधान

कश्मीर के विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पड़ावों से गुजरने पर एक ऐसा महत्वपूर्ण काल बिन्दु उपस्थित होता है, जब हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया शुरू हुई, इस्लाम और वेदान्त के मेल के लिए सूफी संतों ने भूमि तैयार की तथा मनुष्य और ईश्वर के मध्य रागात्मक सेतु रचे गए। दरअसल, यह 14वीं शताब्दी का मध्यकाल और सुल्तान अलाउद्दीन का शासन-काल था। सूफी संत मीर सैयद हमदानी और शेख नूरद्दीन वली की मानव कल्याणार्थ दार्शनिक अभिव्यक्ति उत्कर्ष पर थी। सामाजिक पुनर्जागरण की इस पावन वेला में एक ऐसी विलक्षण संत कवयित्री का अवतरण हुआ जो कश्मीरी लोगों में लल्ला, लल्लेश्वरी, ललयोगेश्वरी, ललद्यद, ललारिफा, आरिफा, बसरा की दूसरी राबिया आदि नामों से जानी जाती हैं।

यह कितना अर्थपूर्ण आश्चर्य है कि आध्यात्मिक ऊँचाइयों को स्पर्श करने वाली मीरा, अण्डाल, राबिया, हब्बा खातून, रूप भवानी, अरणिमाल एवं लल्ला संत कवयित्रियों का मन बाल्यकाल से ही सांसारिक बंधनों के प्रति विद्रोह करता रहा, किन्तु दाम्पत्य जीवन की यंत्रणाओं एवं असहनीय कष्टों से उपजे तनावों ने हर कदम पर उनका मार्ग अवरुद्ध ही किया। एक ब्राह्मण किसान के घर पैदा हुई लल्ला का विवाह कम आयु में ही सोन पंडित से कर दिया गया था। ससुराल में लल्ला को अपनी सास की कटु आलोचनाओं एवं यातनाओं का शिकार होना पड़ा। उससे बहुत काम लिया जाता, लेकिन भरपेट भोजन नहीं दिया जाता था। फिर भी उदारशील लल्ला सब कुछ पूर्ण धैर्य के साथ झेलती रही। इस समय तक उनकी अन्तर्दृष्टि दैहिक चेष्टाओं की संपूर्ण परिसीमाओं को लाँघकर असीम में फैल चुकी थी।

कहा जाता है कि एक दिन लल्ला घाट पर पानी भरने गई हुई थी। सास अपने बेटे से कहने लगी कि देख तो इतनी देर से वह घाट पर क्या कर रही है। सोन पंडित लाठी लेकर घाट पर चले गए। सामने से लल्ला सिर पर पानी का घड़ा लिये आ रही थी। सोन पंडित ने जोर से लाठी घड़े पर मारी, घड़ा फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया, लेकिन पानी ज्यों का त्यों उस देवी के सिर पर स्थिर रहा। घर पहुँचकर लल्ला ने उस पानी से सारे बर्तन धो डाले और बचे हुए पानी को खिड़की से बाहर फेंक दिया। कुछ दिनों के बाद उस स्थान पर तालाब बन गया, जो लाल बाग नाम से प्रसिद्ध है। घरेलू दिनचर्या के कामों से तंग आकर लल्ला ने गृहत्याग

का निश्चय किया। वह वन-वन घूम कर अन्तर्ज्ञान का रहस्य खोजने लगी। यहाँ तक कि उसने अपने वस्त्रों तक की भी परवाह नहीं की। नाचते-गाते हुए लोगों को उपदेश देना उसकी दिनचर्या बन गई। उसने अपनी आत्मा के चिरअन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये सरस अभिव्यक्तियाँ 'वाक्' कही गई। लल्ला ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडंबरों एवं रूढ़ियों का खुलकर खंडन किया। उसने बताया कि धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता। यह शुद्धता जीव को परम तत्त्व तक पहुँचा सकती है। लल्ला मूर्तिपूजा के सख्त विरुद्ध थी। उसने हिन्दू और मुसलमान को एक साथ मिलने का जो मंत्र बताया, वह था - आपस में भाईचारा।

कबीर की तरह लल्ला ने 'मसि-कागद' का कभी प्रयोग नहीं किया। उनके वाक् (पद) गेय हैं, जो प्रारंभ में मौखिक परंपरा में ही प्रचलित रहे। इन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। सर्वप्रथम लल्ला की वाक् अभिव्यक्तियों का संकलन राजानक भास्कराचार्य ने आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व किया। उनके बाद सर जार्ज ग्रियर्सन ने 1914 में महामहोपाध्याय पंडित मुकुन्द राम शास्त्री से लल्ला के पदों (वाक्) की पाण्डुलिपि प्राप्त करने को कहा। काफी जाँच-पड़ताल के बाद शास्त्री जी को एक पाण्डुलिपि मिली। इसके अलावा उन्हें गुशि (बारामुला से 30 मील की दूरी पर एक गाँव) के लिए ब्राह्मण धर्मदास से मौखिक रूप में लल्ला के वाक् सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्हीं दो माध्यमों के आधार पर शास्त्रीजी ने लल्ला की वाक् अभिव्यक्तियों की टीका आधी हिन्दी में और आधी संस्कृत में तैयार करके डॉ. गिर्यसन को दी, जिन पर उनकी पुस्तक 'लल्ल वाक्यानि' आधारित है। इसमें ग्रियर्सन ने 109 वाक् लिखे। यह पुस्तक 1920 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लंदन से प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् आनंद कौल बामजाई, चरागी, जियालाल कौल जलाली और रामज्यू भल्ला ने अपनी पुस्तकों में क्रमशः 75,38 और 149 वाक् अभिव्यक्तियों का संकलन किया।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि लल्ला से पूर्व कश्मीरी साहित्य में ऐसी कोई रचना नहीं मिलती जो विशुद्ध रूप से कश्मीरी में लिखी गई हो, यद्यपि शितिकंठ की 'महानय प्रकाश' कृति को कश्मीरी की प्रथम कृति माना जाता है। लेकिन यह भी बड़ा सत्य है कि इस कृति की भाषा कश्मीरी के उतनी निकट नहीं जितनी कि लल्ला के वाक् की हैं। कश्मीरी भाषा की मौलिक ध्वन्यात्मकता को लल्ला से बढ़कर शायद ही किसी ने पहचाना है। यही कारण है कि उनके वाक् तत्काल प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं। इन वाक् अभिव्यक्तियों की भाषा संस्कृत निष्ठ है, लेकिन कहीं-कहीं पर अरबी-फारसी शब्दों की छाप नजर आती है। इनमें धर्म-दर्शन और सदाचार संबंधी तथ्यों की प्रधानता विशेषतया परिलक्षित होती है। लल्ला के वाक् अपनी स्पष्टता, सारगर्भितता और प्रभाव के कारण अनुपम हैं। इनमें कवयित्री ने जीवन दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में व्यक्त किया है। कवयित्री के कृतित्व का परिचय पहली बार 'तारीख-ए-कश्मीर' (1930) में मिलता है।

कवयित्री लल्ला के वाक् साहित्य का मूलाधार दर्शन है और उनका प्रत्येक वाक् दार्शनिक चेतना का आगार सिद्ध होता है। उनके पदों (वाक्) पर शैव, वेदान्त तथा सूफी दर्शन की स्पष्ट छाप है। लल्ला विश्व चेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है। उनके अनुसार सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना संभव है। सकल दृष्टि में जो गोचर है, वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। ब्रह्म को ढूंढ़ने के लिए केवल एकाग्रता, लगन, निष्ठा एवं त्याग की आवश्यकता है। शंकर के अद्वैत का कवयित्री ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। वह उस सिद्धावस्था को पहुँच गई थी जहाँ पर 'स्व' और 'पर' की भावनाएं लुप्त हो जाती हैं -

'युस हो मालि हैडयम गोल्यम मसरत करयम्,
सुय हो मालि मनस रतटयम् न जांह।
शिव पुनन चैलि अनुग्रह करयम्,
लुकुहुन्द हैडुन में करयम् क्याह।'

अर्थात् चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या

तिरस्कारा, मैं कभी मन में उसका बुरा न मानूंगी। जब मेरे शिव का मुझ पर अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा करने से क्या होता है। लल्ला ने अपनी साधना में प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया और ब्रह्म का अन्वेषण किया। अपने हृदय का मल भस्म किया, मन को वश में किया और अपने आँचल को ब्रह्म के समीप फैलाया। स्नेह और जल से जीवात्मा अपने मल स्वच्छ करके बर्फ के समान अपने को निर्मल बनाती है। उन्होंने स्वीकार किया है कि प्रेम की अग्नि से अपने हृदय को तप्त बनाकर ही उसने शिव शंकर को पा लिया। उन्होंने शिव और शक्ति को एक साथ देखा। वह कहती है कि संसार सारहीन है, नश्वर है, विषम वासनाओं से भरा हुआ है। संसार के बंधन से वही मुक्त हो सकता है, जिसने ईश्वर के सतचित् आनंद रूप का ज्ञान प्राप्त किया है। वह यह भी कहती थीं कि यदि मन ही स्वच्छ नहीं है तो मंदिरों में जाकर पूजा-अर्चना करने का क्या फायदा? प्रभु प्रत्येक मनुष्य के भीतर में हैं। कवयित्री की दृष्टि धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक विषमताओं और अन्यायों पर भी पड़ती है। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थस्थल और कोरे पुस्तकीय ज्ञान पर निर्ममता से प्रहार किए-

'दीव वटा, दीवार वटा
प्यठ बान छुय मीक वाठ
पूज कस करख हूट बटा?
कर मनस त पवनस संगाठ।'

अर्थात् यह देव भी पत्थर, यह देवालय भी पत्थर। ऊपर-नीचे सब एक समान भाव पत्थर ही पत्थर। फिर रे पंडित, तू पूजा करेगा किसकी? मन-प्राण को एकत्र करना सीख ले। एक अन्य महत्वपूर्ण वाक् में वह कहती हैं कि रे मनुष्य, यदि तू प्रबुद्ध है, तो अपने आप को पहचान, यही प्रभु से मेरा परिचय है--

'अविचारी हम छिय पोथ्यन परान
यिथु तोत परान राम पंजरस।
गीता परान हीथा लबान
परम गीता त परान छस।'

अर्थात् अविचारी पोथियाँ वैसे ही पढ़ते हैं जैसे तोता पिंजरे में राम-राम रटता है। ऐसे ही व्यक्ति गीता पढ़ते हैं, मात्र दिखावे के लिए। मैंने सच में गीता पढ़ी है, उसे अभी तक पढ़ रही हूँ। लल्ला के एक विशिष्ट वाक् में उनका अध्यात्म शिखर पर है-

'अजपा गायत्री हंस हंस जपिथ,
अदम त्राविध सुय अद रठ।
यैम्य त्रोत अहम सुय रूप पानय,
बो न आसुन छुय वौप दीश।'

अर्थात् रे मनुष्य, अजपा गायत्री मंत्र को अपनी प्रत्येक साँस में जाप कर। अहं को छोड़कर उस ब्रह्म तत्त्व को धारण कर। जिसने अहं को त्याग दिया, वही आत्म भाव के रूप में स्थिर रहा।

कवयित्री ने योग, साधना और समाधि के बल पर विश्वभर में एक विशिष्ट जगह बनाई। उका साधना पक्ष ज्ञानमार्गी है और योग तत्त्व से परिपूर्ण है। उनके अनुसार मानव शरीर लुहार की खाल (धौंकनी) की भाँति है, जिससे अंदर का प्रकाश बाहर आता है और इसी द्वारा ब्रह्म से मिलन होता है। यौगिक विचारधारा के अनुसार ही वह भी इस शरीर में सूर्य और चन्द्रमा को विद्यमान मानती हैं। वह यह भी मानती हैं कि योगी अपनी योग क्रिया से ही ईश्वर का साक्षात्कार करता है। सहज ज्ञान के लिए सहज विचार की आवश्यकता पड़ती है। प्राणायाम को अपनाकर जीव अपने अन्तःकरण में ही प्रभु से साक्षात्कार करता है। लल्ला ने अपनी योग साधना में 'ओंकार' (ऊँ) को अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार ओंकार आदि भी है और अंत भी। उन्होंने ओंकार को हृदय में स्थान देकर साधना की। इसीलिए उनकी साधना पद्धति अन्तर्जगत की साधना है तथा वेदान्त और सूफी साधना पद्धतियों का अद्भुत संगम भी।

लल्ला ने ईश्वर को पाने के लिए समाधि का भी उपयोग किया, क्योंकि उस अवस्था में एकाग्रता, तन्मयता का होना अनिवार्य हो जाता है। इस अर्थ में उन्होंने भक्ति के नए रूप को जन्म दिया। लल्ला ने अपने आप को शिव को सर्मपित किया और जो भी ज्ञान पाया, उसे लोगों में बाँटती चली गई--

'आसा बोल कडिन्यम सास,

मैं मनि तासा रवीद न हेय
बो योद सहज शंकर बखत आसा
मकरिस सासा मल क्या पैये।'

अर्थात् मेरे लिए चाहे मुँह से हजार गालियाँ भी क्यों न निकालो, मेरे मन के वासी (आत्मा) को इससे किसी तरह का खेद नहीं पहुँचेगा। मैं अगर सहज-शंकर की भक्त हूँ तो भला मेरे मन दर्पण पर मैल कैसे जम सकती है। अतः यह सत्य प्रसूत तथ्य है कि लल्ला की साधना प्रवृत्ति अन्तर्जगत की साधना है, न कि आध्यात्मिक और बौद्धिक चिंतन का प्रतिफलन। वह केवल योग का आत्माभ्यास है। उन्होंने कठिन भक्ति-साधना से जीवन काल में ही अपने परम प्रभु का मार्ग खोज लिया था और ईश्वर के धाम में प्रवेश कर लिया था। आश्चर्य नहीं कि लल्ला ने ईश्वर को स्वयं अपने में स्थित पाया। वह हमेशा कहती थी कि प्रत्येक स्त्री और पुरुष मेरे लिए दया व परोपकार के पात्र हैं। प्रेम जीवन का आधार है, सृष्टि का सार है, भगवान् की सत्ता और स्वरूप है।

दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो लल्ला ने चेतन को ईश्वर का अंश माना है। प्रलय काल में चेतन ब्रह्म की जो सूक्ष्म स्थिति है, वही सृष्टि के समय स्थूल रूप में प्रकट होती है। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार माना है। उसका न नाम है, न रूप है न कोई गोत्र है। परमात्मा के इस आत्म-स्वरूप को जो पहचानता है, वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ईश्वर सर्वव्यापक है, वह गगन भी है, धरती भी है। लल्ला कहती है कि संसार के बंधन से वही मुक्त हो सकता है, जिसने ईश्वर के सत् चित्त आनंद रूप का ज्ञान प्राप्त किया है। जो लोग सांसारिक इच्छाओं को वश में करते हैं, उन्हें ही आत्मिक शांति प्राप्त होती है। लल्ला ने माया की सत्ता को मानते हुए सांसारिक मोह-माया के जाल से निकलने के उपाय भी बताए। उन्होंने कहा कि मनुष्य सांसारिक लालसाओं का त्याग करे तथा ईश्वर भक्ति में अपना समय व्यतीत करे।

यदि सामाजिक कोण से देखा जाए तो लल्ला ने कश्मीर की स्त्रियों का मान बढ़ाया और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाई। वह कश्मीर की पहली संत कवयित्री थी, जिसने अपने उपदेशों के जरिए लोगों को ईश्वर के प्रति जागृत किया। लल्ला प्रसिद्ध सूफी संद सैयद अली हमदानी की समकालीन थी। उनके साथ हुई प्रथम भेंट ने लल्ला को गहरे में प्रभावित और प्रेरित किया। संत हमदानी द्वारा यह पूछे जाने पर, 'हे देवी, तुमने अपनी देह की यह क्या हालत बना दी है, तो लल्ला ने उत्तर दिया, 'हे खुदा दोस्त!' अब तक मेरे सामने से केवल औरतें ही गुजरती रहीं, उनमें कोई भी पुरुष नहीं था, आप मुझे मर्द-ए-कामिल (तत्त्वज्ञानी) दिखाई दिए, इसीलिए मैं अपनी देह छिपा रही हूँ। लल्ला ने स्त्रियों को एक नया महत्त्व दिया और स्त्री द्वारा आत्मदाह प्रथा का खंडन किया। उन्होंने बताया कि स्त्री का भी जीवन होता है, वह पुरुष का अभिन्न अंग है। स्त्री भी अपनी आजादी से जीवन जीना चाहती है। स्त्री के बिना पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं है। लल्ला स्त्रियों को एकत्रित करके समझाती है कि प्रथु तथा पति की सेवा करो और कभी किसी से मत डरो, केवल ईश्वर से डरो। कहना न होगा कि लल्ला की भक्ति एवं उसके वाक् साहित्य द्वारा स्त्रियों में एक नई चेतना आई।'

यह मानने में भी असहमति की कोई गुंजाइश नहीं है कि कश्मीरी संत कवयित्री लल्ला की दृष्टि आधुनिक थी। अपने समय की प्रताड़ित और घर से निष्कासित स्त्री लल्ला ने नारी शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं सामाजिक कुरीतियों को मारक चुनौती दी तथा पाशविक शक्तियों के प्रति विद्रोह किया। इधर नारी स्वातंत्र्य, नारी चेतना, महिला अधिकार आदि को लेकर जो विमर्श-कवायदें की जा रही हैं, उसकी नींव तो एक साधारण परिवार की स्त्री लल्ला ने शताब्दियों पहले ही रख दी थी। वह बहुत उच्च विचार रखती थी और उसने उच्च एवं आदर्श विचारों का ही लोगों में प्रचार किया। उसके वाक् साहित्य में प्रकाशवान दीप्ति के भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान कायल रहे हैं और आज भी हैं।

3150, सेक्टर 24-डी
चंडीगढ़ - 160023
मो. : 9876301085

•

डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा का 'जम्भेश्वरदर्शनम्'

डॉ. मंगलाराम

इतिहास की दृष्टि से राजस्थान का गौरव मात्र इसी कारण नहीं है कि यह शूरमाओं और बलिदानी पुरुषों की धरती रही है, बल्कि इस कारण भी है कि यह अनेक सन्तों तथा चिन्तकों की भी जन्म स्थली रही है। राजास्थान राजनीतिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है उतना या उससे भी अधिक सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व रहा है। यहाँ राजशक्ति का जितना विशद एवं विस्तृत अध्ययन हुआ है उतना या उससे भी अधिक सन्त-भक्ति तथा चिन्तक जगत् का अन्वेषण एवं अनुसंधान हुआ है।[1] जगत्गुरु भारतवर्ष ते क्रान्तप्रज्ञ तथा साक्षात् धर्म द्रष्टा वैदिक ऋषियों ने जिन देवताओं का दर्शन किया उनमें अग्नि, इन्द्र, विष्णु, वरुण, प्रजापति इत्यादि मुख्य हैं। लेकिन विभिन्न वैदिक देवताओं का महत्व भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रहा। इन्द्र इत्यादि जो देवता पूर्व वैदिक युग में अधिक पूज्य-अर्च्य थे, उनका उत्तरकाल में महत्त्व कम होता गया। इसके विपरीत कुछ देवताओं के महत्त्व में वृद्धि भी हुई है, इनमें विष्णु विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में विष्णु का महत्त्व सर्वाधिक था। पन्थों का सम्बन्ध भी उनसे जोड़ा गया।[2] इस भक्तिकालीन युग में जो भी सन्त आविर्भूत हुए उन्होंने विष्णु की महिमा को मण्डित किया।

विक्रम संवत् 1508 में[3] विष्णु भक्त[4] सन्त जाम्भोजी का अवतरण राजस्थान के बीकानेर जिले के पीपासर ग्राम में हुआ। इन्होंने बड़े होकर विक्रम संवत् 1542 में धर्मानुकूल आचरण करने वाले व्यक्तियों को पाहल पिला कर 'विश्नोई पन्थ' की स्थापना की।[5] पाहल का अर्थ - जाम्भोजी की सबद वाणी में पवित्र जल है। जाम्भोजी सिद्ध पुरुष थे -- *सिद्ध जेते संसार में कपिल अरु गोरख जाण। अगस्त्य महादेव रामजी सोई जम्भेश्वर जाण।।*[6] जाम्भोजी मन से निर्मल एवं आशा, तृष्णा, क्रोध, अहंकार से रहित तथा त्यागी सिद्ध थे, जिन्होंने संसार को तत्त्वज्ञान दिया-

सिद्धेश्वर आये संसार। प्रगट बैठे खेल पसार।।
काम अरु क्रोध नहीं अहंकार। जिनकी वाचा निर्मल सार।।
आशा तृष्णा नहीं अहार। माया मोह विगत विकार।।
पलक लगाय न सूतो देव। जागत अनन्त जुगां को भेव।
धरणी पीठ न सूतो बिछाय। घर आश्रम जिण लीन्हों नाय।।

शब्द रूप गुरु सब जग वासा। ज्योति स्वरूपी धर्म निवासा।

तत्त्वज्ञान दियो संसार। सतगुरु बन्दों बारम्बार।।[7]

जाम्भोजी के उपदेशों का मुख्य विषय था पवित्रता, शील, स्नान, जीवहत्या का निषेध, प्रभु भजन, अग्नि पूजा, विष्णु जप तथा भूत प्रेत सेवा का निषेध--

शुचि शील स्नान करो तुम साचा। अखबल मत बोलो मुख वाचा।।

जाण बूझ मत मारो जीव। मांस न खावो करो मत बीह।।

मत कसाइयां देवो जीव। जीवां संग रहे नित सीव।।

मुंडत करो सीश का बाल। हरियश गावो हाथे ताल।।

अग्नि की नित पूजा करो। विष्णु जाप निरन्तर करो।।

भूत-प्रेत की सेवा मत करो। अखिल विष्णु सेव हृदय में धरो।।[8]

विश्नोई पन्थ में चूंकि बीस और नौ नियम हैं, इसलिए इन उनतीस नियम[9] वाले पन्थ को विश्नोई पन्थ कहा जाता है। इन नियमों में मुख्य हैं -- बच्चे के जन्म पर तीस दिन सूतक मनाना, पांच दिन तक ऋतुमती स्त्री को गृहकार्यों से पृथक् रखना, प्रतिदिन प्रातः स्नान करना, अमावस्या का व्रत रखना, विष्णु देव का भजन करना, हरा वृक्ष नहीं काटना, रसोई में खाना अपने हाथ से बनाना, नीले वस्त्रों का परित्याग करना इत्यादि --

तीस दिन सूतक पांच रूतवन्ती न्यारो।
सेरा करो सिनान सील सन्तोष सुच प्यारो।।
तीन काल की नंवण सांझ आरती गुण गावो।
होम हित चित प्रतीत सूं वास वैकुंठा पावो।।
पांणी बांणी इंधणी दूध ज लीजै छांण।
छिमा दया हिरदे धरो गुरु बताया जांण।।
चोरी निंधा झूठ बरजियौ वाद न करणो कोय।
उमावस व्रत राखणौं भजन विष्णु बतायो। जोय।।
जीव दया पालणीं रूंख लीलो नहीं घावै।
अजर जरै जीवत मरै वास बैकुंठा पावै।।
करे रसोई हाथ आन को पलो न छुआवै।
अमर रखावै धाट बैल बधिया न करावै।।
अमल तमाखू भांग मद सूँ दूर ही भागै।
लील न लावै अंग देखतां दूर ही त्यागै।।[10]

विश्नोई पन्थ की उपर्युक्त आचार-संहिता की दो मुख्य बातें हैं। प्रथम तो यह कि इस पन्थ के लोग विष्णु की उपासना करते हैं, क्योंकि जाम्भोजी ने पदे-पदे विष्णु जप को उत्तम माना है। वे कहते हैं-

विसन विसन तूं भणि रे प्राणी जे मन मानैं रे भाई।

दिन को भूलो राति न चेत्यो कांय पडि सूतौ आस किसी मनि थाई।

कुढि काची लगवाइ घंणा छै कुस ल किसी रे भाई।

हिरदै नावं विसन को जंपौ हाथे करो टबाई।[11]

दूसरी बात यह है कि इस पन्थ के लोग पर्यावरण प्रेमी है इसलिए ये वृक्षों तथा हरिणों की खातिर अपनी जान कुर्बान करने को तत्पर रहते हैं। इस प्रसंग में जोधपुर महाराजा के आदेश पर काटे जाने वाले खेजड़ी (खेजड़ली) वृक्षों को बचाने के लिए उन वृक्षों से लिपटकर 563 विश्नोई युवक-युवतियों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे।

जाम्भोजी ने वास्तव में एक मानवतावादी पन्थ चलाया और जीवों को बचाने, पेड़ पौधों को लगाने तथा नशे की लत से दूर रहने का मुख्यतः उपदेश दिया जो उनकी जन-कल्याण की भावना को प्रदर्शित करता है। जाम्भोजी ने तत्कालीन समाज में प्रचलित लोककथाओं, प्रवादों तथा पौराणिक आख्यानों को प्राधनतः अपने उपदेशों में स्थान दिया। उन्होंने जाति-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष को ही अपने उपदेशों का विषय नहीं बनाया अपितु जाति-पांति से दूर हिन्दू-

मुस्लिम, जाट-भाट, ब्राह्मण-वैश्य, चारण, शूद्र सभी को अपने पन्थ में दीक्षित किया -

जाट भाट जोगी संन्यास। ब्राह्मण अरू शूद्र करें गुरु आश।।

खान पीर प्रच्या सुलतान। राजवंशी वैश्य पुनि जान।।

चारण चित्त प्रचा अरु ज्ञानि। ऊँच-नीच और सिद्ध विज्ञानी।।[12]

जाम्भोजी लोगों की भलाई में आजीवन लगे रहे। तत्कालीन समाज में व्याप्त कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा और पाखण्ड पर उन्होंने विशेष रूप से प्रहार किया। इनके आप्तोपदेशों में पदे-पदे गुरुमहिमा[13], अतिथि सत्कार, सत्यभाषण[14] सत्करणी, जीवगति और पर्यावरण प्रेम की चर्चा मिलती है।

जाम्भोजी के परवर्ती शिष्यों में नाथोजी, रेडोजी, वील्होजी आदि मुख्य हैं। जाम्भोजी के द्वारा उपदिष्ट विष्णु-भक्ति की सार्थकता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक जगह वील्होजी ने विष्णु और जाम्भोजी को अभिन्न माना है। वे कहते हैं --

औ उंकारे आदि गुर निरंजण निराकार।
आकारे जुग जौ गयौ आप रह्यौ निराकार।।
आप रह्यौ निराकार सांम्य सुनकार समायौ।
अलष नै लबीयौ जाय भेद कही विरलै पायौ।।
आदि विसंन बोहरूप किया जुगे जुग जुवा।
बील्ह कह जपौ विसन जो आपे तौं आपे हुवा।[15]

अर्थात् ओंकार रूप आदि परमात्मा का स्वरूप है जो आकार रहित है परन्तु उसने इस संसार को स्वरूप प्रदान किया है। स्वयं आकारहीन होते हुए भी संसार को अपने में समाहित रखता है। ऐसे स्वरूप वाले ब्रह्म को देखा नहीं जा सकता। इस संसार में विरले ही उसे जान पाते हैं। आदि विष्णु ने अलग-अलग युगों में अपने अलग-अलग रूप प्रकट किये हैं। ऐसे ब्रह्म स्वरूप आदि गुरु विष्णु अर्थात् जाम्भोजी का संसार के लोगों द्वारा जाप किया जाना चाहिये।

महान् सन्त जाम्भोजी की सबद वाणी पर जयपुर के मनीषी सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ मूर्धन्य विद्वान डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा ने स्तुत्य कार्य किया है। उन्होंने जम्भवाणी के सम्यक अध्ययनोपरान्त 'जम्भेश्वर-दर्शनम्' नामक एक साठ पृष्ठीय अल्पकाय पुस्तक लिखी है परन्तु विषय की दृष्टि से इसमें सम्पूर्ण जम्भवाणी को समाहित करके 'गागर में सागर' वाली उक्ति को चरितार्थ किया है। मंगलाचरण के रूप में डॉ. शर्मा ने सर्वप्रथम गुरु जम्भेश्वर को नमस्कार किया है -- *पूर्व जम्भेश्वरं नत्वा कृषकंच ततः परम्। विद्याधरप्रसादेन जम्भवाणीं निरूपये।।*[16]

'जम्भेश्वरदर्शनम्' जम्भवाणी का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत करने वाला संस्कृत में अभूतपूर्व ग्रन्थ है। डॉ. शर्मा ने ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है -- जम्भेश्वर दर्शन की यह विशेषता है कि इसमें मोक्ष तथा आध्यात्मिक तत्त्वों के विवेचन के साथ-साथ तदनुकूल आर्थिक व्यवस्था का विवेचन है। आर्थिक व्यवस्था में जाम्भोजी ने श्रम को आधार माना है। श्रम के द्वारा व्यक्ति जिन पदार्थों का उत्पादन करता है उनमें उन पदार्थों का महत्व है जिनसे समाज का भरण-पोषण होता है। इन पदार्थों में अन्नादिक आते हैं। ऐसी स्थिति में अपने श्रम से अन्नादिक को उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों का आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। ये व्यक्ति कृषक हैं। कृषकों को प्रधानता देने के कारण जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित अर्थव्यवस्था को हम कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था कह सकते हैं।[17] श्रम से उपजाया गया अन्न हक की कमाई के अन्तर्गत आता है जिसमें लौकिक शोषण नहीं होता। अतः कृषक को अपना जीवन परिश्रम के साथ जीना चाहिये -- *कृषकस्य श्रमो धर्मः श्रमेणैवान्नमर्जयेत। न्याय्या वृत्तिरियं प्रोक्ता नास्यां लोकस्य शोषणम्।।*[18]

जाम्भोजी की कृषि नीति के बारे में डॉ. शर्मा लिखते हैं - "जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित कृषि प्रधान ग्रामीण अर्धव्यवस्था की आज भी प्रासंगिकता है।

इसका कारण यह है कि भारत कृषि प्रधान तथा ग्राम बहुल देश है अतः कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समुचित महत्त्व देते हुए इस विषय में जाम्भोजी के निर्देशक तत्त्वों को लागू किया जा सत्त्कता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान तथा तज्जन्य औद्योगीकरण के फलस्वरूप इस समय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन भी आया है। विज्ञान के फलस्वरूप बड़े उद्योग अस्तित्व में आए हैं। इससे नगरों का विकास हुआ है तथा वहां बड़े उद्योगों में पूंजीपतियों तथा श्रमिकों के सम्बन्धों ने अर्थ को दृष्टि में रखकर संघर्ष का रूप धारण किया है। इस विषय में जाम्भोजी के निर्देशक तत्व सहायक हो सकते हैं। जाम्भोजी विज्ञान के विरोधी नहीं थे अतः विज्ञान के विकास से उत्पन्न होने वाले औद्योगिकरण के भी विरोधी नहीं कहे जा सकते। अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में उनका एक सिद्धान्त रहा है कि व्यक्ति को सरलता का जीवन जीना चाहिये। सरलता के इस जीवन को हम प्राकृतिक जीवन भी कह सकते हैं। विज्ञान प्रकृति के तत्वों का ही अन्वेषण है। अतः विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप अस्तित्व में आने वाला जीवन प्रकृति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक प्रगति की दिशा में अथवा विज्ञान के प्रयोग की दिशा में ध्वंसात्मकता के कारण हमें कहीं-कहीं जो विकृति दिखाई देती है, वह विज्ञान की प्रकृति का परिणाम न होकर मानव की विकृत बुद्धि का परिणाम है। अतः उसके लिए विज्ञान की प्रकृति दोषी नहीं। ऐसी स्थिति में विज्ञान की प्रकृति को विकृति से रोकने के लिये जाम्भोजी के आचरण तत्त्वों को ध्यान में रखना उचित है।[19]

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाम्भोजी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं कि शरीर विनाश को प्राप्त होता है अतः मृत्यु निश्चित है। मरे हुए का पुनः जन्म होता है। अतः बद्ध जीव का आवागमन चलता रहता है। जीव सदा मूल को सींचे तथा मूल का ही पोषण करे। मूल को सींचता हुआ तथा उसे पुष्ट करता हुआ प्राणी जन्म के बन्धन से छूट जाता है -

पिण्डं विनाशमायाति मरणं तेन निश्चितम्।
मृतस्य जायते जन्म बद्धस्य संसृतिस्ततः।।
मूलं जीवः सदा सिचेन्मूलंचैव पोषयेत्।
सिंचन्मुष्णंश्च तत्प्राणी मुच्यते जन्मबन्धनात्।।[20]

जाम्भोजी ने इस नश्वर शरीर की बार-बार निन्दा करते हुए सदाचार पर विशेष बल दिया है। उनका मानना है कि व्यक्ति को मनहठ और अहंकार को छोड़कर वाद-विवाद और बकवाद से दूर रहना चाहिये। यथाशक्ति दान भी देना चाहिये-- *सत्यधिकेऽधिकं देयं स्वल्पे च स्वल्पमेव हि। नावकाशो निषेधस्य देयं किंचित्तु यत्नतः।।*[21] अर्थात् आधिक हो तो अधिक देना चाहिये और थोड़ा हो तो थोड़ा देना चाहिये। ना करने के लिए स्थान नहीं है। कुछ न कुछ तो देना ही चाहिये।

वृद्धावस्था में व्यक्ति चलने-फिरने से रह जाता है। आंखों में पानी बहने लगता है और शरीर पुराना पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपने सगे-सम्बन्धियों, बेटी-बेटों, बहन-भाइयों सभी को बुरा लगने लगता है। जैसे तैल निकाल लेने पर बची हुई खली चौपाये जानवरों के काम की ही रहती है और घाणी खली हो जाती है, वैसे ही युवावस्था बीत जाने पर वृद्धावस्था खली के समान तथा यह शीरर खली-घाणी के समान रह जाता है। वृद्धावस्था में कभी भी जीवात्मा शरीर से निकलकर अपने मार्ग पर लग जायेगी और बहुत दूर धर्मराज के यहां प्रस्थान करेगी-- हंस उडांणौ पंथ विळंव्यौ कियौ दूरि पंयौणौ।[22] मनुष्य की इस नश्वरता तथा मृत्युविषयक रहस्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. शर्मा ने जम्भेश्वरदर्शनम् के तत्त्वमीमांसा नामक प्रथम अध्याय में लिखा है कि -- "सांसारिक स्थिति में यह जीवन स्थूल शरीर से युक्त होता है। अतः इस अवस्था में दो प्रमुख तत्त्व होते हैं- चैतन्यांश तथा स्थूल शरीर। चैतन्यांश का स्थूल शरीर से योग समय

विशेष के लिए होता है। यह समय समाप्त होने पर चैतन्यांश का शरीर से विच्छेद हो जाता है। इसी का नाम मरण अथवा मृत्यु है। मृत्यु होने पर जीवात्मा चली जाती है और भौतिक शरीर यहीं रह जाता है।[23]

जाम्भोजी ने मुसलमानों को उपदेश देते हुए अनेक कहा है कि हे मुसलमानों! यदि तुम्हारा हृदय साफ है तो हज और काबा पास में ही है अर्थात् दिल में ही है, फिर जोर-जोर से नमाज अदा करने की क्या जरूरत है? इसके अतिरिक्त भाई से भी अधिक प्यारे बैल और मां से भी अधिक बढ़कर गाय के ऊपर तुम छुरी क्यों चलाते हो? - भाई नाऊं बळद पियारों। तिंह के गळै करद क्यों सारो?[24] बैल, गाय इत्यादि भी तो तुम्हारी ही तरह ईश्वर की सन्तान हैं, अतः व्यक्ति को समस्त प्राणियों के प्रति दया होनी चाहिये तथा पीड़ा किसी को नहीं पहुंचानी चाहिये। मनुष्य स्वयं जीए अथवा न जीए, परन्तु वह जीवों की रक्षा यत्नपूर्वक करे-*दया भूतेषु सर्वेषु पीडनं न च कस्यचित्। स्वयं जीवेन्न वा जीवेज्जीवान्रक्षेत्स यत्नतः।।*[25]

दया के स्वरूप की सूक्ष्मग्रन्थी को सुलझाते हुए डॉ. शर्मा ने 'जम्भेश्वरदर्शनम्' के आचारमीमांसा नामक द्वितीय अध्याय में कहा है- "अन्य दर्शनों में इसके स्थान पर प्रायः अहिंसा का उल्लेख है। अहिंसा और जीवदया में तात्त्विक अन्तर नहीं। अहिंसा में पीड़न के अभाव का निर्देश है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति के हृदय में दया का भाव हो तभी वह किसी कारणवश उत्पन्न होने वाली हिंसा अथवा पीडन के भाव को रोक सकेगा। इस प्रकार अहिंसा में दया का भाव निहित है। जीवदया में इस भाव को स्पष्ट कर दिया गया है। दयाभाव प्राणी की विपन्न अवस्था को देखकर उत्पन्न होता है तथा यह प्रायः तभी उत्पन्न होता है जब प्राणियों के प्रति पूर्णतः प्रेम अथवा आकर्षण हो। अतः जीवदया जीवप्रेम को मान कर चलती है।[26]

डॉ. शर्मा ने विश्नोई धर्म के लक्ष्य को उद्घाटित करते हुए स्वग्रन्थ के नियम मीमांसा नामक तृतीय अध्याय में लिखा है -इस धर्म का लक्ष्य जीवन्मुक्ति है तथा इसका मार्ग शौच-विधान (शुचि का विधान) तथा उसका निर्वाह है। यह शुद्धि मूलतः अन्तःशुद्धि है, परन्तु साथ ही बाह्य शुद्धि भी इसके लिए अपेक्षित है। अन्तःशुद्धि में सहायक के रूप में बाह्य शुद्धि का विधान किया गया है।[27] मन की शुद्धि होमादि अनुष्ठान तथा शील (सदाचरण) से होती है --

मनः पूतिकरं कर्म सदा सेव्यं प्रयत्नतः।
होमादिकमनुष्ठेयं शुद्धिरनेन सर्वतः।।
शीलं परं मतं स्नानं शीलंचैव परं तपः।
शीलयेन कृतं स्नानं सुस्नानः स इति श्रुतम्।।[28]

इस प्रकार डॉ. शर्मा का "जम्भेश्वरदर्शनम्" नामक ग्रन्थ निश्चित ही मुमुक्षु के लिए एक ऋजु सोपान है जो जिज्ञासु पाठक की अन्तः ग्रन्थियों को सुलझाने तथा साधक को मुक्ति प्राप्त करवाने में विशेष सहायक हो सकता है। विशेष रूप से ग्रन्थकार द्वारा रचित नियम-मीमांसा नामक ग्रन्थ का तृतीय अध्याय उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व तथा बहुश्रुतता का मानक है जहां उन्होंने विश्नोई पन्थ के नियमों की योग तथा वेदान्त दर्शन के साथ स्पृहणीय तुलना की है।[29]

सन्दर्भ

1. राजस्थान-भारती खण्ड 1 : भारतीय इतिहास को राजस्थान का अवदान' खण्ड 2 : "भारतीय संस्कृति को राजस्थान का अवदान"1, सं. सोभाग माथुर एवं शंकर गोयल, जोधपुर, 1995। **2. यथा -** *पहलू नांव विसन को सिंवरु सिरजणहार। जिण्य ओ पन्थ चलाइयो खरतर खंडाधार।।* अर्थात् सर्वप्रमथ मैं उस सिरजनहार विष्णु के नाम का स्मरण करता हूँ जिन्होंने विश्नोई पन्थ चलाया और जो आचरण में तलवार की धार के समान कठोर है - वील्होजी की वाणी, सम्पादक, विश्नोई, कृष्णलाल, सम्भराथल प्रकाशन, अबूबशहर सिरसा, हरियाणा, पृ.-4। **3.** *पदरा सै अठोतरै गुरु आयो करि भाव। कुपरि पलटण परे करण थापण निरत्य नियाव।।* अर्थात् बुरी शिक्षाओं को हटाने के लिए और सच्चा न्याय स्थापित करने के लिए संवत् 1508 में श्री जाम्भोजी

का शुभागमन इस मरुभूमि में हुआ। - वील्होजी की वाणी, पूर्वोक्त, पृ.-59। **4.** *विसन विसन तूं भणि रे प्रांणी पै के लाख उपाजूं। रतनकाया बैकूंठे वासो जुरा मरणं भोव आजूं।।* जाम्भोजी की सबद वाणी, सम्पादक, माहेश्वरी हीरालाल, बी.आर. पब्लिकेशन्स, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1976। **5.** मंगलाराम विश्नोई 'राजस्थान के महान् सन्त जम्भोजी की शब्द वाणी', राजस्थान-भारती, (भाग 2, सम्पादक, सोभाग माथुर तथा शंकर गोयल, जोधपुर, 1995)। **6.** महात्मा सुरजनदास, श्री 108 श्री जाम्भोजी महाराज का जीवन-चरित्र, गोपाल प्रिण्टिंग प्रेस, बीकानेर, विक्रम संवत् 2007, पृ.-17। **7.** महात्मा सुरजनदास, पूर्वोक्त, पृ. 17-18। **8.** महात्मा सुरजनदास, पूर्वोक्त, पृ.-11। **9.** *गुणतीस धर्म की आखड़ी हिरदै धारियो जोय। जाम्भोजी किरपा करी नांव विष्णोई होय।।* -जाम्भोजी की सबद वाणी, पूर्वोक्त, परिशिष्ट, पृ.-253। **10.** जाम्भोजी की सबद वाणी, पूर्वोक्त, पृ.-252-53। **11.** जाम्भोजी की सबद वाणी, सबद 99। **12.** श्री 108 श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र, पृ.-13। **13.** *गुरुरेख परं तत्वं गुरुश्च करुणालयः। गुरौ साक्षात्कृते तस्मिन् ज्ञेयं कुत्रावशिष्यते।।* अर्थात् गुरु ही परम तत्त्व है तथा गुरु करुणा का घर है। उस गुरु का साक्षात्कार होने पर कोई वस्तु जानने योग्य शेष नहीं रहती। - शर्मा. डा. ब्रह्मानन्द, जम्भेश्वरदर्शनम्, जयपुर, 1986, पृ.-03। **14.** *सत्यमेव परो धर्मः सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्। सत्यं हि तात्त्विंक रूपं सत्येनातः समन्वयः।।* अर्थात् सत्य परम धर्म है। सत्य पर सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्य सात्त्विक है तथा सत्य से समन्वय होता है। -जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-3। **15.** वील्होजी की वाणी, पूर्कोक्त, पृ.-123। **16.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-1। **17.** जम्भेश्वर-दर्शनम्, पूर्वोक्त, भूमिका पृ.-5। **18.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-4। **19.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, भूमिका, पृ.-6-7। **20.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-1। **21.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-4। **22.** जाम्भोजी की सबदवाणी, पूर्वोक्त, सबद 98। **23.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-7। **24.** जाम्भोजी की सबदवाणी, पूर्वोक्त, सबद 8। **25.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-4। **26.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-29। **27.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-45। **28.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-5। **29.** जम्भेश्वरदर्शनम्, पूर्वोक्त, पृ.-56-59। गुरु जम्भेश्वर पर हाल ही में कई नये ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। उनमें श्री रोहतास कुमार सुथार का ग्रन्थ 'गुरु जम्भेश्वरवाणी' कुरुक्षेत्र, 1994 विशेषतः उल्लेख्य है। इस प्रसंग में प्रोफेसर दिनेश चन्द्र शुक्ल कृत 'राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता' जोधपुर, 1991 भी उल्लेखनीय है।

आचार्य, संस्कृत विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)

●

कल्कि अवतार

मौसम विभाग चेतावनी देता है, समुद्री तूफान आने को है, मछुवारे न जावें। इसका मतलब है- अपने को बचाओ।

पुराणों की भी चेतावनी है। लो, सावधान ! कल्कि अवतार होने को है। ये परिस्थितियाँ तुम्हें कहीं नाश की ओर न ले जायें। इनसे बचो तो बचो।

विष्णु पुराण कहता है-- 'सोचो, समझो।' इन स्थितियों में कल्कि अवतार होता है।

'जब समाज उस हालत में पहुँचेगा-- जब अर्थ से ही समाज में प्रतिष्ठा होगी। धन ही अन्य सब गुणों व धर्मों का मूल होगा। अभिरुचि ही पति-पत्नी के बीच संबंध का बंधन होगा। झूठ ही व्यवहार में यशस्वी होने का साधन होगा। स्त्री ही एकमात्र सुख होगी। बाहर का वेश ही एकमात्र धर्म होगा।'

(अर्थंएव अभिजन हेतुः धनमेव शेष धर्म हेतुः, अभिरुचिरेव दांपत्य संबंध हेतु, अनृतमेव व्यवहार हेतुः स्त्रीत्वमेव उपभोग हेतुः) यदि ऐसे भद्दे एवं जंगली आदर्श बहुत काल तक बने रहें तो ये विनाश के हेतु हैं। स्मरण रहे-- विश्व की कोई भी संस्कृति बाहरी आक्रमण से नष्ट नहीं होती-- भीतर का विलास ही विनाश बनता है। जड़ में घुन तो विशाल वृक्ष धराशायी। *- पं. अक्षयचंद्र शर्मा*

समर्पिता साहित्यानुरागी विदुषी महिमा मेहता

डॉ. विद्या केशव चिटको

'अमर उजाला' में खबर छपी थी महिमा मेहताजी के निधन की। संक्षिप्त समाचार था बस चार छः लाईन में। छपा था तार सप्तक कवि नरेश मेहता की धर्मपत्नी का 9 नवम्बर 2022 को भोपाल में स्वर्गवास हो गया। उनके निधन की वार्ता से मैं सुन्न रह गई थी। महिमाजी का इतना ही परिचय नहीं था। 'चौथा संसार' के संपादक श्री नरेश मेहताजी सन् 1993 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार, कवि, नाटककार, प्रबन्ध काव्य, मंचीय एकांकी नाटक, उपन्यासकार, यात्रावृत्तकार, समीक्षक, आलोचक, संपादक, स्तंभकार, अनुवादक अर्थात गद्य पद्य की सभी विधाओं पर कलम चलाते सिद्धहस्त, प्रतिभा संपन्न हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार की सहधर्मिणी, जीवन संगिनी थी सुश्री महिमा मेहता।

नरेशजी को साहित्यकार बनाने में उनकी अहं भूमिका रही है। श्री नरेशजी के साथ उनका विवाह तय हुआ उस समय वे कानपुर में एक महाविद्यालय में प्राध्यापिका थी। समाजशास्त्र पढ़ाती थी। विवाह होने के बाद महिमाजी ने परख लिया था कि नरेशजी में लेखन की अलौकिक प्रतिभा है। अतः वह उनके लेखकीय गुणों को तराशने में जुट गई। नरेशजी के लेखन की प्रेरणा बनी। स्वामी की काव्य प्रतिभा को निखारना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। अपने पति को साहित्यकार बनाने के लिए उन्होंने अपने आप को समर्पित कर दिया था। वास्तव में महिमाजी में भी लेखन की प्रतिभा थी। विवाहोपरान्त जब नरेशजी ने इलाहाबाद में ही स्थायी होने का मन बना लिया था उस समय इलाहाबाद रेडियो स्टेशन के लिए उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखी थी जो प्रसारित भी की गई थी। उन दिनों रेडियो पर जो कहानियाँ प्रसारित की जाती थी वह कार्यालय में जमा करनी पड़ती थी। चेक लिया और घर वापस लौटना। महिमाजी ने अपनी पढ़ी हुई कहानियाँ कहीं संभाल कर नहीं रखी थी। श्री नरेशजी को तो यह भी जानकारी नहीं थी कि महिमा कहानी भी लिखती हैं। एक बार नरेशजी के एक दोस्त घर पर उनसे मिलने आए थे, बातचीत के दौरान ही उन्होंने कह दिया कि पिछले मंगल को जो कहानी महिमाजी की प्रसारित हुई थी वह बड़ी भावपूर्ण, मार्मिक कहानी थी। नरेशजी ने उस दिन जाना कि महिमा कहानियाँ भी लिखती हैं। आश्चर्य भरी नजर से वे मित्र को देखते रहे। बोले-मैं तो जानता नहीं था। महिमाजी अपने वैवाहिक जीवन में, घर गृहस्थी के कामों और बच्चों के स्कूल, पढ़ाई में ही उलझी रही। उसी को वो अपना कार्यक्षेत्र समझती थी। उसी में वह खुश थी, संतुष्ट थी। जीवन के उत्तरकाल में उन्होंने कलम पुनः हाथ में

पकड़ी "उत्सव पुरुष नरेश मेहता" और "परछाईयां" आत्मवृत्त लिखा जिसे प्रभाकर श्रोत्रियजी ने प्रकाशित करवाया। श्री नरेशजी ने सच्चे दिल से इस बात को स्वीकार किया है कि पत्नी के प्रति दायित्व न निभा पाने की चुभन वो अनुभव कर रहे हैं। वे अपने लेखन कि शक्ति महिमाजी को ही मानते थे। इस भाव को उन्होंने एक कविता में व्यक्त भी किया है। महिमाजी अपने स्वामी की काया-छाया ही रही। नरेशजी जब लिखने बैठते और पूरी तरह उसमें डुब जाते थे उस समय वह मौन चुपचाप उनकी बगल में जाके खड़ी हो जाती और निहारती रहती। "तुम मेरे मौन हो" कविता में नरेशजी ने लिखा है---

न होती हो तो मेरे पार्श्व में होती हो।

लेकिन जब होती हो तो न जाने कहां होती हो?

"वनपाखी सुनो" और "एक समर्पित महिला" जैसी कविताओं में भी यह स्वर गूंजता है। वांशी का मधुर स्वर उसमें समाया हुआ है। उनके उपन्यासों के पात्रों के संवादों में तो महिमाजी ही बोलती जान पड़ती हैं। "यह पथ बंधु था" उपन्यास को पढ़ते वक्त तो मुझे यह आभास होता रहा कि अरे! यह तो पात्र नहीं परंतु महिमा दीदी ही बोल रही हैं।

गार्हस्थ्य जीवन में महिमाजी ने अनेक चढ़ाव उतार देखे। अनेक संकटों का सामना करते वह कभी हताश, निराश, हतबल नहीं हुई। सब समय उस परिस्थिति में भी मुख पर मंद हास और ताजगी बनी रहती थी। अनेक संकटों का उन्होंने धीरता से मुकाबला किया। एक बार तो स्थिति ऐसी आ गई थी कि नरेशजी को नौकरी ही नहीं थी, आय के सभी साधन बंद हो गए थे पर गृहस्थी तो चलानी ही है। उस समय सुमित्रानंदन पंत ने इलाहाबाद रेडियो में प्रोडयुसरी के लिए नरेशजी को आमंत्रित किया था पर आत्मस्वाभिमानी नरेशजी ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। घर की जरूरतों को पूरा करना, बच्चों का स्कूल और उनकी जरूरतों को तो पूरा करने के लिए तैयार रहना ही था। उस गमय महिमाजी ने पति को आश्वस्त करते, धीरज देते उनके कंधे पे हाथ रखते बोली थी "यदि नौकरी करने की जरूरत आन पड़ी तो मैं नौकरी करूंगी। आप अपनी कलम थामे रहिये। हिम्मत क्यों हारते हो? आप फ्रिलान्सर राईटर ही बने रहेंगे। मुझे यदि कॉलेज में नहीं मिली तो कहीं स्कूल में पढ़ाने का काम तो मिल ही जाएगा और वह भी नहीं तो पानी पिलाने का तो मिल ही जाएगा, आप बस लिखते रहिए।" यह था महिमाजी का आशावाद। बस, इसी के बल पर नरेशजी का एक-डेढ़ महिने में "यह पथ बन्धु था" लिख कर पूरा हो गया।

प्रयाग महिला विद्यापीठ में राजशास्त्र की अध्यापिका का पद रिक्त हुआ था। महादेवीजी का कोमल भाव एक लेखक की पत्नी के प्रति रहा। उम्मीद थी कि उस पद पर महिमाजी की नियुक्ति हो जाएगी पर वैसा हुआ नहीं। नियुक्ति किसी और की हो गई। अंततः महिमाजी सी टी ग्रेड में साठ रुपये मासिक पर अध्यापिका बन गई। इस बीच प्रथम पुत्र बाबुल का आगमन हुआ और पांच साल बाद बुलबुल (कन्या) का जन्म हुआ।

महिमाजी सदैव शान्त प्रकृतिस्थ और कभी भी उत्तेजित न होने वाली महिला थी। नरेशजी को गुस्सा बहुत आता था। वे किसी भी वजह से गुस्से में न हों इसका वह सदैव ध्यान रखती थी। उनके और बच्चों का मनपसन्द खाना बनाती, घर की छोटी मोटी सभी जिम्मेदारियों को उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। बच्चों की पढ़ाई और उनकी जरूरतों को पूरा करना, यही उनकी देवपूजा थी। हर समय दस पंद्रह रुपये वाली सूती साड़ी पहनती थी, आभूषणों का उन्हें कोई शौक नहीं था। कलाई पर दो सोने की चूड़ियाँ, उसमें एक कांच की लाल रंग की चूड़ी, कान में छोटासा कर्णफूल और गले में एक सोने की चेन। हल्के दाम की चप्पल होती थी। स्कूल से घर लौटते समय साग सब्जी और जरूरत के सामान लेकर लौटती। घर के काम में जुट जाती थी। अगल बगल पड़ोस में जाकर बोलने बतियाने का उनका स्वभाव ही नहीं था। नरेशजी ने उनके इस अनाम भाव को एक कविता में व्यक्त किया है। लिखते हैं--

घास के अनाम फूलों से लेकर
पलाश और कचनार तक
कहाँ कहाँ कौन उपकृत है तुममे
तुम्हारे इस अनुग्रह रंग रास से।
फूल होने का अर्थ है फाल्गुन हो जाना।

माँ को नरेशजी ने बाल्यकाल में ही खो दिया था पर माँ की प्रतिकृति वे महिमाजी में देखते थे।

जो भी जहाँ भी लीपता होता है
गोबर से घर आंगन जो भी जहाँ भी
प्रतिदिन दुआरे बनाता होता है
आटे के कम से अल्पना
जो भी जहाँ भी होले की कडाही में छौंकता
होता है मेथी की भाजी
जो भी जहाँ भी चिंता भरी आखें लिए निहारता
होता है दूर तक पथ। हाँ वही है माँ।

माँ के इस पवित्र मंगल कल्याणकारी रूप के दर्शन किए हैं श्री नरेश मेहताजी ने, पत्नी महिमा में। महिमाजी बतरसी थी। बातें करना और बातें सुनना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। जब खाली समय होता था तब पति पत्नी खूब बातें किया करते थे। अपने अतीत में घटी घटनाओं को एक दूसरे को सुनाया करते थे जिनमें उनका भोगा अतीत होता था। नरेशजी धरमपुरी से बदनावर, नरसिंहपुर फिर उज्जैन कभी प्रयाग में अमृतराय के मिंटो रोड के मकान में रहना फिर 99 लूकरगंज इलाहाबाद की गृहस्थी, एक चटाई, एक दरी, कुछ रसोई के बर्तन, बिजली का पंखा तो था नहीं। घंटा घर के बाजार से एक फर्शी मेज खरीद लाए थे, लिखने की सहूलियत हो गई थी। एक लंबी डंडी का पंखा गरमी में बड़ा सुखकर होता था।

महिमाजी के घर में वैष्णवी संस्कार थे। पिता पंडित सत्यनारायण व्यास और माताजी गुणवती व्यास, तीन भाई बहन। भाई बड़ा, बहन छोटी, मझली वह। दादाजी इन्दौर के मल्हारगंज में प्रख्यात गोवर्धन मंदिर के सेवक थे। पुष्टिमार्गी वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव ब्राह्मण परिवार में ठाकुरजी की सेवा परंपरा थी। मंदिर में जाना, पूजा, कथा, मंगलारति में शामिल होना, घर में पुष्टिमार्गी वातावरण था। इसी पृष्ठभूमि में संकट समय में धैर्य, आत्मविश्वास और साहस को बनाये रखने का सामर्थ्य उन्हें पुष्टिमार्गी वैष्णवी वातावरण से ही मिला था। परिणामस्वरूप सत्तर वर्ष की आयु में उन्होंने "उत्सव पुरुष नरेश मेहता" और पांच साल बाद "परछाईयाँ" आत्मवृत्त की रचना कैन्सर जैसे असाध्य रोग से लड़ते रहने का बल इसी ने दिया। फिर पुत्र इशान के अकस्मात चले जाने का दुख सहन करने का बल भी इसीने दिया। ये सभी बातें वे सुध बुध खोकर नरेशजी को सुनाती और नरेशजी बड़े ध्यान से सुनते। पूर्ण रूप से अतल तल की गहराई में डूब जाते और दूसरे ही क्षण महिमाजी से कहते "तुम बातें तो बहुत अच्छी कहती हो और उससे भी कहीं ज्यादा अच्छी तुम लिसनर हो। बातचीत के सिलसिले में ही महिमाजी ने नरेशजी से कहा "जब मैं थोड़ी समझदार हो गई थी और घर में जब मेरी शादी की बातें चल रही थी तभी मैंने सोच लिया था कि मैं साहित्यकार से शादी नहीं करूंगी, अन्य चाहे वह चपरामी ही क्यों न हो!" मैं सोचती थी कि साहित्यकार तो घर गृहस्थी के प्रति चिंतनशील नहीं होता है। चपरासी तो दप्तर के बाद समय पर घर लौट आएगा... लेकिन कृष्ण कन्हैय्या गोवर्धनधारी ने मेरी बात नहीं सुनी। शमशेरजी को मेरी अम्मा राखी बांधती थी। हम बच्चे उन्हें मामाजी कहते थे। शमशेरजी ही नरेशजी का प्रस्ताव लेकर आए थे। मेरे भाई ने नरेशजी को मेरी फोटो दिखाई थी। उस समय मैं कानपुर में नौकरी करती थी। सन् 1957 में नरेशजी लखनऊ जा रहे थे, भाई उनके साथ हो गए। दोनों कानपुर आए मेरे कॉलेज में। हम तीनों एक रेस्टॉरेंट में गए। दोनों ने चाय पी पर मैंने तपाक से कह दिया "मैं तो आइसक्रिम लूंगी"। नरेशजी देखते रह गए। फिर ढेर सारी बातें इधर उधर की होती रही। नरेशजी ने मुझे कविता सुनाने के लिए कहा। मैंने धड़ाधड़ महादेवीजी, दिनकर, शिवमंगल सिंह और न जाने किसकी किसकी जो मुझे याद थी सब सुना दी। "क्या कहने हैं?" वे तो खुशी से झूम उठे। उन्होंने उसी

खुशी में बैरे के हाथ पर चांदी का एक चमचमाता रुपये का सिक्का धर दिया। बेरा भी खुश और नरेशजी भी। क्वालिटी रेस्टॉरेंट का दरवाजा स्वचलित था! व्यक्ति के बाहर निकलते ही बन्द हो जाता था। नरेशजी निकलने ही वाले थे, मैंने दरवाजा पकड़ लिया जिससे वह बंद न हो जाए। नरेशजी मेरी इस गतिविधि को भी देख रहे थे, उस समय उन्होंने शायद मन ही मन कोई निर्णय ले लिया था। भाई ने उनकी प्रतिकिया जाननी चाही। वे बोले-- "बंधु ऐसा लगा कि आपकी बहना तो सौ पावर का बल्ब है। वह आंगन में जल उठा है वह तो ऐसा दिपक है जो प्रकाश के साथ शांती से भर देता है।" उसके बाद नरेशजी लखनऊ चले गए, भाई इलाहाबाद और मैं कानपुर में ही थी। विवाह तय हो गया। नरेशजी ने पत्री मिलाने की कोई जरूरत नहीं समझी। वे तो यह जानकर ही खुश थे कि यह इन्दौर के पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय के पुजारीजी के परिवार की पौत्री है। उनके लिए यही बहुत था। विवाह के समय नरेशजी की आयु पैंतीस वर्ष और महिमाजी की पच्चीस वर्ष। 16 फरवरी सन् 1957 को दोनों विवाहसूत्र में बंध गए।

विवाहोपरान्त महिमाजी ने अपने व्यक्तित्व को नरेशजी में समाहित कर दिया, उनके जीवन में अन्तर्धारावत शान्त भाव से प्रवाहित होती रही, कभी पत्नी के रूप में तो कभी बच्चों की मां। उनकी पढ़ाई-लिखाई, उनके कपड़े साफ सुथरे रखना, आए गए की खातिर करना। उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की। पति के सामने अपने कामों की गिनती नहीं की। इस प्रकार से पूरे पैंतालीस साल गुजर गए। ऐसे बीते मानो कल की ही बात हो । सन् 1993 में श्री नरेशजी ज्ञानपीठ से सम्मानित हुए। महिमाजी के लिए सर्वोच्च आनंद का क्षण था। मन में एक भाव उठा कि मेरी तपम्या, मेरी साधना, मेरे कष्ट, मेरा परिश्रम, मेरा त्याग, मेरी सेवा, मेरा समर्पण, मेरा संघर्ष सब कुछ सफल सार्थक हुआ। मुझे वह सबकुछ दे गया एक ईमानदार एवं स्वाभिमानी साहित्यकार की पत्नी का जो दाय था वह सब कुछ मिल गया। जीवन के उत्तरकाल में तो नरेशजी ने भी यह स्वीकारा था। जाने के पहले एक दिन वह ब्रह्म बेला में जग गए, बोले "मेरी सभी उपलब्धियों का श्रेय तो तुम्हीं को है, कारण मेरे लेखकीय व्यक्तित्व का अनिवार्य रूप तो तुम्हीं हो।" याद आ गया वह क्षण, महिमा नाम तो उन्हीं का दिया हुआ, मेरा नाम तो मनोहरकांता मेहता था। मेरे सारे शैक्षणिक प्रमाणपत्र भी इसी नाम से हैं। मेरे पेन्शन के रिकार्ड में भी यही नाम दर्ज है। विवाह के निमंत्रण पत्र पर भी तो मेरा यही नाम था। नरेशजी मुझे घर में एकान्त में "रानी" सम्बोधन से बुलाते थे। उन्होंने मेरे मूल नाम का कभी संज्ञान नहीं लिया। एक दिन उन्होंने कहा था "अजी मैंने तो आपके महिमा नाम में आपके नाम का अद्याक्षर 'म' और मध्य का 'ह' तो बनाये ही रखा है। सुनकर मैं मुस्कुरा पड़ी।"

तिरासी वर्ष के उम्र में आते-आते महिमाजी को ऑस्टिओपोरोसिस ने जकड़ लिया था। पैरों की ताकत जाने लगी थी। एक दो फैक्चर हो जाने के कारण पैर बांध दिए गए थे। हिलना-डुलना, चलना-फिरना सब बंद। तीन महिने के लिए छः बाइ छः के पलंग पर कैद। पैर टेढ़े मेढे होते जा रहे थे, अब क्या होगा? धीरे-धीरे धैर्य चुकता जा रहा था। अवसाद नैराश्य से मन भर जाता, पीपल के पत्ते की तरह मन थरथरा जाता। हंसने बोलने का भी मन नहीं करता था पर वंदना थी उसके लिए तो मुझे जीना ही था क्योंकि मैंने वादा किया था कि उसे छाती से चिपटाये रखूँगी। उठ बैठी, गर्दन टेढ़ी मेड़ी हो गई थी, कॉलर लग गई थी। गर्दन में और कमर में भयानक दर्द के बावजूद मैंने लिखना प्रारंभ किया और ग्यारह महिने में "परछाईयाँ" तैयार हो गई। छपने में अवश्य दो वर्ष लग गए। मुझे पता नहीं किसकी लिखी पंक्तियाँ हैं पर सब समय याद आती--

जिस आन से मैं बिखरा मैं खिला हूँ
कोई भला खिले क्या?
जिस शिद्दत से मैंने कांटे सहे हैं
कोई भला सहेगा क्या?
और जिस शान से बिखरते बिखरते भी

बचा हुवा हूँ उस शान से कोई जिन्दा रहेगा क्या?

ईशान के चले जाने के बाद तो वे काठ हो गई थी पर न जाने कौन सी अन्दरूनी शक्ति थी जिसने प्राण डोर को कस के पकड़े रखा था। पति को सहारा देने के लिए और पुत्रवधू वंदना जिसे उन्होंने ईशान की जगह पर बैठा लिया था वह तो बस उसी के लिए जी रही थी। हालांकि यह उनका जीना नहीं था वह तो जिन्दा लाश थी बस जिन्दगी को घसीट रही थी। प्राण है उसे बनाये रखने के लिए दो कोर मुंह में डाल गले के नीचे उतार देती। जर्जर काया, कभी जोडों का दर्द, कभी पीठ का दर्द तो कभी निद्रा न होने के कारण बेचैनी, अस्वस्थता, घबराहट सब समय अनुभव करती थी। वंदना उन्हें जबरदस्ती अस्पताल ले जाती थी। शरीर को घसीटते वह अस्पताल चली जाया करती थी। जो दुख, कष्ट, यातना वह झेल रहीं थी उसके लिए आंसू बहाने की सख्त मनाही थी, कारण थी वंदना। महिमा दीदी ने कुबूल किया था कि वह वंदना को अपने से कभी अलग नहीं करेगी, उसके लिए वह खुश रहेंगी और यही अपनी अतिम सांस तक करती रही।

नरेशजी अपनी साहित्यिक बहसों और संगोष्ठियों में और व्यक्तिगत चर्चाओं में "वाङ्मय" शब्द का प्रयोग बारंबार किया करते थे। कहते थे कि "वाङ्मय को बढ़ाया जाना चाहिए।" इसी बात को ध्यान में रखकर "श्री नरेश मेहता स्मृति वाङ्मय सम्मान" की स्थापना की गई। प्रतिवर्ष यह सम्मान दिया जाता है। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अन्तर्गत वाङ्मय सम्मान की स्थापना की गई है। मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्वीकृत मान्य है। नरेशजी को विभिन्न सम्मानों में जो सम्मान राशि मिली थी उसे महिमा दीदी ने खर्च नहीं की थी, सम्भाल कर रखी थी। दो लाख इक्कीस हजार की यह राशि मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पास जमा है जिससे यह सम्मान निरंतर चलता रहेगा। यह महिमा दीदी का उदात्त भाव था, पति के प्रति समर्पण भाव था।

शान्त, सौम्य, प्रसन्न मुखमुद्रा चेहरा, मधुरभाषी, कांति युक्त नेत्र और मुख पर सदा तृप्ति, संतोष का भाव। वह आल्हादक चेहरा मेरी आखों के सामने आ गया। मैं स्मृतियों के सागर में पूर्ण रूप से डूब गई। सागर में उठती गिरती लहरें, समुद्र के अथाह जलराशि में एक दूसरे पर प्रहार करती घटनाएँ मेरी आखों के सामने नर्तन करने लगी। याद आया "चौथा संसार" के सम्पादक नरेश मेहता संगमनगर में रहते थे। कुछ माह पहले ही उन्हें ज्ञानपीठ मम्मान से सम्मानित किया गया था। सर्वत्र अखबारों में उनके व्यक्तित्व, कृतित्व- "संशय की एक रात", "प्रवादपर्व", "यह पथ बंधु था" की चर्चा थी। मालव माटी की यह महान विभूति। महाराष्ट्र राज्य हिन्दी परिषद का पष्ठ अधिवेशन दिनांक 14, 15 अक्तूबर 1995 को नासिक में सम्पन्न किए जाने की घोषणा कार्यकारिणी द्वारा की गई। उद्घाटन हेतु मूर्धन्य साहित्यकार ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त श्री नरेश मेहताजी को निमंत्रित किए जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। निमंत्रण हेतु मैं इन्दौर पहुंची। नरेशजी और श्रीमती मेहताजी से वह मेरी प्रथम भेंट थी पर महिमा दीदी के आत्मीय भाव की दृढ़ रज्जु में मैं इस प्रकार बंध गई कि ईशान की शादी में पूरे चार दिन मैं उनकी पीठ पीछे बहन जैसी थिरकती रही। "उत्सव पुरुष नरेश मेहता" पुस्तक उन्होंने मुझे डाक से भेजी थी। पूरे दो सप्ताह बाद एक पोस्टकार्ड लिखा मिला था, पुस्तक मिली या नहीं? पत्र का जवाब क्यों नहीं दिया? उस समय मैं अमेरिका के हर्नडन, व्हर्जिनिया में थी। आने पर जब डाक देखी, उसमें वंदना का पत्र था "अम्मा आपको याद करती हैं। तबियत ठीक नहीं है, समय निकाल कर आ जाइयेगा। आपकी बन्दू।"

मैं अमेरिका से लौटी थी 26 दिसंबर 2022 को। उसके पहले 9 नवंबर को ही मेरी प्यारी दीदी बैकुण्ठधाम वासी बन गई थी। उनसे मेरी भेंट नहीं हो पायी। मन में एक कचोट सी रह गई। आज उनकी अनेक स्मृतियों का पाथेय लेकर जी रही हूँ। उनके साथ बिताये पलों की याद ने व्यथित कर दिया है, उन बीते पलों की यादों को उजागर कर रही हूँ।

8, यमाई, अक्षर सोसाइटी,
समर्थ नगर, नासिक, महाराष्ट्र
मो. : 9527313387

चरकसंहिता में सांख्यदर्शन : एक अभ्यास

बलाभाई एस. रबारी

वेदों का तात्पर्य धर्म और ब्रह्म में संनिहित है। 'धर्म' यज्ञादिरूप होने से भाव अर्थात् अनुष्ठेय है। 'ब्रह्म' सच्चिदानंद स्वरूप होने से भूत अर्थात् सिद्ध है। आयुर्वेद उपवेद होने से धर्म और ब्रह्ममूलक चिकित्सा पद्धति है। यह जीवों के पुनर्जन्म, उत्क्रमण और अधोगति को स्वीकार करनेवाली तथा वेदों को प्रमाण माननेवाली और ईश्वरभक्ति का प्रतिपादन करनेवाली चिकित्सा-पद्धित है। इसमें वैशेषिकों के द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायरूप षड्विध भावपदार्थों को और नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमानरूप चतुर्विध प्रमाणों को तथा वादके चौवालीस प्रभेदर्श का वर्णन किया गया है।[1] सांख्यों के त्रिगुणात्मक प्रधान और महत्, अहम्, मन, दशविध इन्द्रिय तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसंज्ञक पञ्चतन्मात्राओं को एवं आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीसंज्ञक पञ्चमहाभूतरूप चतुर्विंशति अधित्-अनात्म-वस्तुओं को और अविक्रय विज्ञानात्मा पुरुषसंज्ञक चिद्ववस्तु को स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। सदा सभी भावों की वृध्धि करनेवाला सामान्य होता है एवं ह्रास का कारण विशेष होता है। इस शास्त्र में दोनों की प्रवृत्ति की जाती है।[2] इन दोनों की क्रिया से दोष, धातु एवं मलों की वृध्धि और ह्रास किया जाता है।

शरीरस्थान में पुरुष धातुभेद से 24 तत्त्वों का माना जाता है। ये 24 तत्त्व हैं - मन, दस इन्द्रियाँ, अर्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध और आठ धातुएँ[3]-- 1. अव्यक्त, 2. महान, 3. अहंकार, 4. आकाश, 5. वायु, 6. अग्नि, 7. जल तथा 8. पृथिवी, तन्मात्राएँ और इनसे युक्त प्रकृति। आत्मा को जाननेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मा को स्वतन्त्र, वशी, सर्वत्र जाननेवाला, व्यापक, क्षेत्रज्ञ (शरीर को भलिभाँति समझनेवाला), साक्षी (संसार में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं को देखनेवाला) है, ऐसा कहते हैं। यहाँ 'तथा' शब्द से आत्मा को निर्विकार भी माना जाता है।

योगियों के अष्टांगयोग और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशसंज्ञक पञ्चविध क्लेश, शुक्ल-कृष्ण-मिश्रसंज्ञक त्रिविध कर्म, सुख-दुःख-मोहसंज्ञक त्रिविध विपाक और अन्तःकरणनिष्ठ संस्कारसंज्ञक आशय से नित्यमुक्त पुरुषविशेषरूप सर्वेश्वर को स्वीकार करनेवाली चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद है। आयुर्वेद वेदान्तशैली में देवताओं को विग्रहयुक्त तथा सर्वेश्वर को धन्वन्तरि-शिवादिरूपों में अवतारयुक्त माननेवाली एवं आत्मा की ब्रह्मरूपता और सर्वरूपता को स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। आयुर्वेद वैदिक

प्रस्थान के अनुरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय को माननेवाली चिकित्सा-पद्धति है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का आरोग्य ही प्रधान कारण है।[4] रोग सुखमय श्रेय और जीवन का अपहर्ता है। योग और मोक्ष में सभी प्रकार की वेदनाओं की निवृति हो जाती है। मोक्ष होने पर वेदनाओं का समूल विनाश हो जाता है और योग द्वारा मानव मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है। अतएव योग को मोक्ष का प्रवर्तक कहा गया है।[5]

आत्मा का मनसे, मनका इन्द्रियों से और इन्द्रियों का अपने-अपने शब्द, स्पर्शादि विषयों से जब संयोग होता है, तब सुख तथा दुःख की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जब आत्मा में मन स्थिरभाव से रहता है, तब सुख-दुःख की प्रतीति नहीं हो पाती। अतएव सुख-दुख की निवृत्ति हो जाती है तथा शरीरधारी पुरुष वशी हो जाता है। योग को जाननेवाले महर्षि इस स्थिति को 'योग' नाम से जानते हैं।[6] योग ही मुक्ति का कारण है। यह मुक्ति दो प्रकार की होती है एक वह जो शरीर छूटने से होती है, उसको केवल मुक्ति कहते हैं। दूसरी है जीवनमुक्ति, जो केवल योगी पुरुष को ही सुलभ होती है।

अपने चित्त को दूसरे के शरीर में प्रवेश कर देना, दूसरे के मनकी बात जान लेना, सभी प्रकार के विषयों को जान लेने किसी भी कार्य में स्वच्छन्द होकर प्रवृत्त होने की क्षमता, दृष्टि की विशेष शक्ति, श्रवण की विशेष शक्ति, स्मृति की विशेष शक्ति, अलौकिक कान्तिवाला होना, अपनी इच्छा से लुप्त अथवा प्रकट होने की शक्ति, इस प्रकार योनियों में होने वाले बल के आठ भेद होते हैं। इनकी समुपलब्धि शुद्ध सत्त्व की सुस्थिर प्रतिष्ठा से समाधान से होती है।[7]

रजोगुण और तमोगुण का अभाव हो जाने से तथा पुनर्भव में हेतुभूत कर्मों का क्षय हो जाने से और दुःख एवं दुःख के हेतुओं के सर्वविध संयोगों का वियोग मोक्षसंज्ञक अपुनर्भवरूप योग कहा जाता है।[8]

जिससे वह सर्वभावों के स्वभाव को जानता है, जिससे निःस्पृह रहता है, जिससे वह योग की सिद्धि करता है और जिससे वह सांख्यतत्त्व का ज्ञानी हो जाता है।[9] जिससे वह अहंकार को प्राप्त नहीं करता, जिससे वह जन्म-मरणरूप कारणों की उपासना नहीं करता, जिससे वह राग-द्वेषादि किसी का आश्रय नहीं लेता। जिससे वह सभी सांसारिक वस्तुओं का परित्याग कर देता है,[10] जिससे नित्य-अजर-शान्त तथा अक्षरब्रह्म को प्राप्त किया जाता है, उसी सत्य बुद्धि को सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा और ज्ञान माना गया है।[11]

सम्पूर्ण संसार में आत्मा को विस्तृत और सम्पूर्ण संसार को अपने में देखनेवाले तत्त्वज्ञ की ज्ञानमूला शान्ति नष्ट नहीं होती। सदैव सब अवस्थाओं में सभी शरीरगत भावों को समानरूप से देखते हुए ब्रह्मभूत जीवनमुक्त अतएव शुद्धचित्त महापुरुष का देहेन्द्रियादि के साथ सम्बन्ध नहीं होता। अविक्रिय विज्ञानघनता के बोध से लिंगविमुक्त 'जीवन्मुक्त', ऐसा कहा जाता है। विपाप, विरजस्, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म, निर्वाण और शान्ति-इन पर्यायों द्वारा मोक्ष का परिचय दिया जाता है।

आयुर्वेद में पञ्चभूत, त्रिगुण और त्रिदोष का वेदान्तसम्मत प्रतिपादन चरक महाभूतों के गुण तथा नाम देते हुए कहते हैं- 1. आकाश, 2. वायु, 3. अग्नि, 4. जल और 5. पृथिवी। इनके क्रमशः गुण-- 1. शब्द, 2. स्पर्श 3. रूप 4. रस और 5. गन्ध।[12] चरक ने 'सर्व द्रव्यं पञ्चभौतिकम्' आदि वचनों के अनुसार सभी द्रव्यों की त्रिगुणमयता और पञ्च भौतिकता का प्रतिपादन करके साम्य और शमन का पथ प्रशस्त किया है।

वेदान्तप्रस्थान के अनुरूप सूत्रस्थानान्तर्गत इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय ८ में इन्द्रियों की भौतिकता वमन की इन्द्रियता का प्रतिपादन किया है। 'खं श्रोत्रे ध्राणे क्षितिः, आदि वचनों के अनुसार 'श्रोत्र' (कान) आकाशीय है, शब्दगुणग्राहक है, अतएव शब्दज्ञान में हेतु है। 'त्वक्' वायव्य है स्पर्शगुणग्राहक है, अतएव

स्पर्शज्ञान में हेतु है। 'नेत्र' तैजस है, रूपगुणग्राहक है, अतएव रूपज्ञान में हेतु है। 'रसना' जलीय है, रसगुण की ग्राहिका है, अतएव रसज्ञान में हेतु है। 'ध्राव' पार्थिव है, गन्धगुणग्राहक है, अतएव गन्धज्ञान में हेतु है।[13]

उक्त रीति से श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और घ्राण (नासिका) सूक्ष्म शरीर के अंतर्गत पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। 'ग्राह्य-ग्राहकभाव सजात्य में होता है वैजात्य में नहीं।' इस नियम के अनुसार आकाशीय गोत्र से आकाशीय शब्दग्रहण आदि उपयुक्त हैं। सूक्ष्म शरीर से अन्तर्गत वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पाँव), उपस्थ (लिंग) और वायु (गुदा) नामक पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं। वाक् से आकाशीय शब्द का विसर्जन होता है। पाणि से वायव्य स्पर्श का विसर्जनरूप प्रदान होता है। पाद से तैजस विसर्जनरूप गन्तव्य तक गमन होता है। उपस्थ से वारुण रस विसर्जनरूप रतिसम्पादन होता है। गुदा से पार्थिव गन्ध एवं गन्धयुक्त मल का विसर्जन होता है।

सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान संजक पञ्च प्राण प्रतिष्ठित हैं। मुख-नासिका के मध्य तथा हृदय-नाभिमंडल और पादांगुष्ठ-प्राण स्थान है। गुदा-मेढ़-उरू और जानु अपान स्थान है। सर्वशरीर में समान की स्थिति है। सर्व संधियों में तथा पाँव-हाथ में उदान की स्थिति है। श्रोत्र, ऊरू, कटि, गुल्फ, स्कन्ध और गला में व्यान की स्थिति है। प्राण से उच्छ्वास और समीकृत रसादि का पृथकरण मान्य है। अपान से श्रवण और मूत्रादि-विसर्जन मान्य है। उदान से उद्गिरण और उन्नयन सम्भव है। समान से शरीर-पोषण और समीकरण सम्भव है। व्यान से प्राण-अपानादि चेष्टारूप ग्रहण संभव है। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय संज्ञक पञ्च उपप्राण हैं। उद्गारादि क्रिया-सम्पादन नाग से होता है। अक्ष्यादि-निमीलन कूर्म से होता है। भूख-प्यास-सम्पादन कृकर से सम्भव है। निद्रादिसम्पादन देवदत्त से संभव है। मृत गात्र की शोभादि धनञ्जय से संभव है।

सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप प्रत्यक्-करणों के पञ्चप्रभेद त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद को मान्य हैं। अन्तःकरण से ज्ञान, मन से संकल्प, बुद्धि से निश्चय, चित्त से अनुसन्धान और अहंकार से अभिमान का सम्पादन सम्भव है। अन्तःकरण, समानवायु, श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय और शब्दगुण की आकाश में स्थिति है, अर्थात् ये आकाशीय हैं। मन, व्यानवायु, त्वक्, हस्तेन्द्रिय तथा स्पर्श की वायु में स्थिति है अर्थात् वे वायव्य हैं। बुद्धि, उदानवायु, चक्षु और पाद तथा रूप अग्नि में स्थित हैं अर्थात् यह तैजस है। चित्त, अपानवायु, जिह्वा, उपस्थ तथा रस की जल में स्थिति है अर्थात् ये वारुण हैं। अहंकार, प्राणवायु, ध्राण, गुदा और गन्धगुण पृथिवी में स्थित हैं अर्थात् ये पार्थिव हैं। आकाशीय समानवायु के अन्तर्गत कृकर नामक उपप्राण मान्य है। वायव्य व्यान अन्तर्गत धनंजय नामक उपप्राण मान्य है। तैजस उदान में देवदत्त नामक उपप्राण का अन्तर्भाव मान्य है। जलीय अपान में कूर्म नामक उपप्राण का अन्तर्भाव मान्य है। पार्थिव प्राणान्तर्गत नाग नामक उपप्राण मान्य है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- ये पञ्च महाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द- ये पञ्च-विषय हैं। अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये पञ्चविध अन्तःकरण है। ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान- ये अन्तःकरण पञ्च के पञ्चविध विषय हैं।

सुषुम्णा, इडा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, अलम्बुषा और कौशिकी आदि कन्दसमुद्भूता प्रमुख दस नाड़ियाँ हैं। गुदा के पृष्ठभाग में कन्दमध्यस्थ मूर्धापर्यन्त पद्मसूत्रसद्दशं विणा-दण्डतुल्य ऋजु-विधुद्वर्ण सुषुम्णा है। सुषुम्णा के वामभाग में वामनासापुट पर्यन्त इडा नामकी चन्द्रनाडी है। सुषुम्णा के दक्षिणभाग में

दक्षिणनासापुटपर्यन्त पिंगला नामकी सूर्यनाडी है। चन्द्र और सूर्य काल के धारक हैं। सुषुम्णा कालभोक्त्री है। इडाके पृष्ठभाग से सव्य नेत्रपर्यन्त गान्धारी है। वामपादागुष्ठपर्यन्त हस्तिजिह्वा है। पिंगला के पृष्ठभाग में स्थित दक्षिण श्रोत्र और नेत्रपर्यन्त पूषा है। गान्धारी और सरस्वती के मध्य पादांगुष्ठ से दक्षिण कार्णान्त पयस्विनी है। पायु मूल से नीचे और श्रोत्रपर्यन्त अलम्बुषा है। कन्द से पादांगुष्ठा पर्यन्त कौशिकी है।

उक्त रीति से पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च प्राण, पञ्च उपप्राण और अन्तःकरण-- इस पञ्चक का समुदाय सूक्ष्म शरीर है। काम और कर्म की स्थिति सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत है। पञ्चभूतों में पृथिवी और जल के योग से कफ की निष्पत्ति होती है। तेज से पित्त की अभिव्यक्ति होती है। वायु की विकृति से वायुरोग की अभिव्यक्ति होती है। भूतचतुष्टय का आश्रय होने से देहगत आकाश कफ, पित्त और वात-- इन तीनों का आश्रय है। कफ और लोभ का, पित्त और क्रोध का तथा वात और काम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कारणशरीर अज्ञानात्मक है। आत्मबोध से अज्ञाननिवृत्ति और स्वतःसिद्ध अक्षय आयुरूप आत्मा की निरावरण स्फूर्ति सम्भव है। धर्मानुष्ठान और देवाराधन के द्वारा सूक्ष्म शरीरगत काम-क्रोधादि आदि की निवृत्ति सम्भव है। स्थूल शरीरगत कफ, पित्त, और वातज व्याधियों का शमन शुद्ध पृथ्वी, जल, तेज और वायु के सेवन से सम्भव है।

कर्मसिद्धान्त और पुनर्जन्मादि का आयुर्वेद में युक्तियुक्त प्रतिपादन- आयुर्वेद के अनुसार ऋतम्भरा-प्रज्ञासम्पन्न महर्षियों ने ऋगादि वेदों का अनुशीलन करके स्मृतियों तथा पुराण-महाभारतादि शास्त्रों की संरचना की है। प्रज्ञापराध के कारण वेदादि शास्त्रों में अनास्था के वशीभूत व्यक्ति उनकी अवहेलना करके असत्कर्ममूलक अधर्माचरण में संलिप्त रहता है। प्रज्ञापराध, असत्कर्म और अधर्माचरण के कारण वायु, जल, देश और काल में विकृत्ति सम्भव है। वायु तथा जलादि की विकृत्ति रूग्णता, अराजकता, राष्ट्र की विपन्नता, विखण्डता और सर्वनाश में हेतु है। भ्रम, प्रमाद, आलस्य, काम, क्रोध, लोभ, भय तथा छल आदि के कारण सम्प्राप्त विवेक में अनास्थादि दोषों से समाच्छादित बुद्धि प्रज्ञापराध का मूल है। जरायुज, देव, नर, पश्वादि तथा अण्डजादि पक्षी आदि के माता-पिता होते हैं। परन्तु स्वेदज और उद्भिज्जों के माता-पिता नहीं होते। अतएव माता-पिता के आत्मतत्त्व का सन्तान में संचार मानना उपयुक्त नहीं। यही कारण है कि स्वलक्षण पञ्चभूतात्मक जड़ शरीर और चेतन आत्मा के संयोग और वियोग में जीवों का कर्म ही हेतु है। आत्मा अनादि और चिद्रूप होने से नित्य है। अतएव उसकी परनिर्मिति असम्भव है। हाँ, अज्ञ जीवों के कर्मानुरूप चेतनविशिष्ट संघातरूप परमात्मा द्वारा निर्मिति अभीष्ट ही है।[14]

शरीर, वाक्, मनःप्रवृत्ति का नाम कर्म है-- इनका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग रुग्णता में तथा सम्यग्योग स्वास्थ्य में हेतु है। विषयलोलुपता के वशीभूत होकर विषयों का अतिसेवनरूप अतियोग पुष्टप्रज्ञा और प्राणशक्ति से सम्पन्न पुष्टशरीररूप स्वास्थ्य का प्रत्यक्ष ही घातक है। वागादि इन्द्रियों का काष्ठमौनादि अप्रयोगरूप अयोगमूकादि होने में प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध है। भोजन, दर्शन, शयन, स्पर्शन, रसनादि का अयुक्त प्रयोगरूप मिथ्यायोग प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिसंपन्न शरीर का प्रत्यक्ष ही घातक है।[15]

पूर्वकर्म, कर्मगत वैचित्र्य, दुग्धापानादि में नवजात शिशु की प्रवृत्ति आदि युक्तियों से आयुर्वेद ने पुनर्जन्म सिद्ध किया है।[16]

मानसिक, वाचिक और कायिक कर्मों द्वारा निष्पाप पुरुष पुण्यवान कहा जाता है। वह इस लोक में सुखी रहता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामरूप त्रिवर्ग का उपयोग करता है और जन्मान्तर के लिये पुण्यों का चयन करता है।

पादटीप

1. इमानि तु खलु पदानि भिषग्वादमार्ग-ज्ञानार्थमधिगम्यानि भवन्ति वादः द्रव्यं, गुणाः, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, निगमन, उत्तर, सिद्धान्त, शब्द, प्रत्यक्ष.......। चरकसम्हिता, गुर्जर विध्योदय व्याख्योपेता, वि. 8/27 प्रका. सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद वि. 8/27। **2.** सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु। च. सूत्र. 1/44। **3.** पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः। मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृत्तिश्चाष्टधातुकी ।। च. शा. 1/17 पृ. 791। **4.** धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।। रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ।। च. सं. सूत्र. 1/15-16। **5.** योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्। मोक्षे निवृत्तिर्निः शेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः।। **6.** आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात प्रवर्तते। सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे ।। निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते। सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः।। च. सं. शा. 1/138-139। **7.** आवेशश्चेतसो ज्ञानमार्थानां छन्दतः क्रिया। दृष्टिः श्रोत्रे स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्। इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम्। शुद्धसत्त्वसमाधानात् तत् सर्वमुपजायते।। (च. सं. शा. 1/140-141)। **8.** मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्। वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते।। (च.सं. शा 1/142)। **9.** सर्वभावस्वभावज्ञो यया भवति निस्पृहः। योगं यया साधयते साड्.ख्यः संपद्यते यया। च. सं. शा. 5/17। **10.** यया नोपैत्यहकारं नोपास्ते कारणं यया। यया नालम्बते किञ्चत् सर्व सन्यस्यते यया।। च. सं. शा. 5/18। **11.** याति ब्रह्म यया नित्यमजरं शान्तमव्ययं। विद्या सिद्धिर्मतिर्मेघा प्रज्ञा ज्ञानं च सा मता।। च. सं. शा. 5/19। **12.** 'महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा' शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तदगुणाः।। च. सं. शा. 1/27। **13.** च. सू. 8/14। **14.** आत्मा मातुः........। च. सू. 11/9-13। **15.** कर्म वाड्मनः शरीरप्रवृत्तिः........। च. सू. 11/39। **16.** पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनो-वाक्कायकर्मणाम्। धर्मार्थकामान् पुरुषः सूखी भुङ्क्ते चिनोति च। सू. 7.30।

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत)
त्रिकमजीभाई चटवानी आर्ट्स
और जे.वी.गोकल
ट्रस्ट कॉमर्स कॉलेज, राधनपुर,
जिला-पाटन, गुजरात-385340
मो.- 9687933870
ईमेल- balassabari@gmail.com

कैसा विरोधाभास !

जीवन में विरोध नहीं, वह विरोधाभासों का एक बड़ा जमघट है।

जो पाना चाहता है, वह दौड़ता-दौड़ता मर जाता है, उसे नहीं मिलता। पर, जो देता है, वही पाता है। पाने की शर्त है -- देना।

जो झुकता है, वह ऊँचा उठता है। जो अकड़ कर रहता है, वह गिरता है। घमंड में दम ही फूलता है, फैलता नहीं।

संसार छाया की तरह है, उस छाया को लेने दौड़ो, वह हाथ नहीं आती, आगे सरकती है उससे पीठ मोड़ो, वह पीछे-पीछे लगी रहेगी।

जिन लोगों ने कहा-- 'यह संसार मेरा है, यहाँ खूब खाएंगे, पीएंगे, मौज करेंगे।' उनको धूल बनाकर मिटा दिया।

जिन्होंने कहा–'संसार नाशवान है, यहाँ घर कैसा।' उन्हीं विभूतियों को संसार ने अपनी स्मृति में संजोकर रखा।

जिसने कहा– 'मैं बड़ा हूँ।' इतिहास ने कहा– 'तू तुच्छ है।' जिसने कहा– 'मैं तो महापुरुषों के चरणों की धूलि हूँ।' इतिहास ने कहा– 'तू महान है।'

- पं. अक्षयचंद्र शर्मा

परिव्राजक सम्राट् महाराज हस्तिन : पुनर्समीक्षा

डॉ. ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव

पाँचवी से छठी शताब्दी के बीच म. प्र. के बघेल खण्ड के सतना से उ. प्र. के बुंदेलखंड के झांसी तक के विस्तृत भू-भाग के शासक रहे परिव्राजक सम्राट् महाराज के चार ताम्रपत्र लेख - गुप्त संवत 156(+319=475 ई.) का खोह ताम्रपत्र लेख[1], वर्ष 163 (482 ई.) का खोह ताम्रपत्र लेख[2], वर्ष 170 (489 ई.) का एरच ताम्रपत्र लेख[3] तथा वर्ष 191 (510 ई.) का मझगवाँ ताम्रपत्र लेख[4] प्राप्त हुए हैं। महाराज हस्तिन तथा महाराज शर्वनाथ का भूमरा प्रस्तर अभिलेख[5] भी ज्ञात है। इसके अतिरिक्त महाराज हस्तिन के पुत्र महाराज संक्षोभ का वर्ष 209 (528 ई.) का भी खोह ताम्रपत्र लेख[6] है, जिनसे महाराज हस्तिन के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

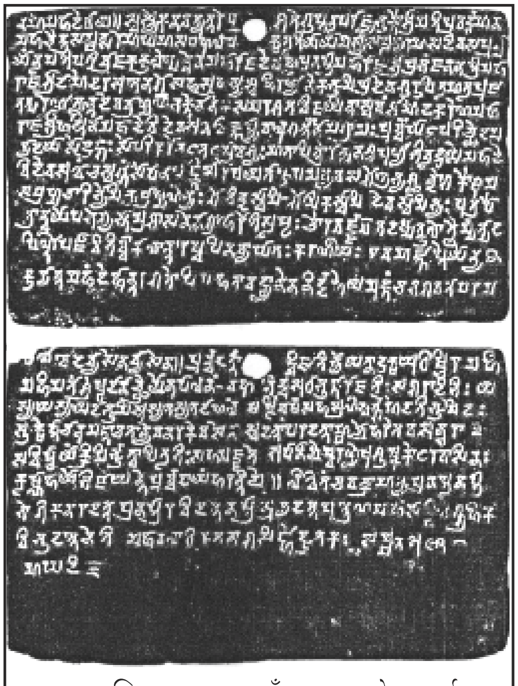

महाराज हस्तिन का मझगवाँ ताम्रपत्र लेख, वर्ष 191 (एकनवत्युत्तरे-ऽब्दशते)

हस्तिन के ताम्रपत्र लेखों में उत्कीर्ण *"नृपति परिव्राजक कुलोत्पन्नेन महाराज देवाढय प्रनप्त्रा महाराज प्रभञ्जन नप्त्रा महाराज दामोदर सुतेन .... महाराज हस्तिना"* के अनुसार महाराज हस्तिन महाराज देवाढय की पौत्री का पुत्र (प्रनप्त्रा), महाराज प्रभञ्जन की पुत्री और उनके दामाद दामोदर का पुत्र (नप्त्रा) था। हस्ति का परिचय प्रथमतः उनके मातृपक्ष अर्थात् ननिहाल की ओर से दिया गया है, किन्तु माता का नाम उल्लिखित नहीं है। अतः महाराज देवाढय की पौत्री और महाराज प्रभञ्जन की पुत्री तथा हस्तिन की माता का नाम ज्ञात नहीं हो पाता, किन्तु पिता का नाम

महाराज संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र लेख, वर्ष 209 (नवोत्तरेऽब्दशतद्वये)

दामोदर स्पष्ट रूप से उत्कीर्ण है।

महाराज हस्तिन को उसके अभिलेखों में स्पष्ट रूप से नृपति कुल में उत्पन्न *(नृपति परिव्राजक कुलोत्पन्नेन .... महाराज हस्तिना)* बताया गया है, किन्तु फ्लीट द्वारा हस्तिन के अभिलेखों को प्रकाशित करते समय उनमें उल्लिखित *"गुप्तनृपराज्य भुक्तौ"* का अनुवाद 'In the enjoyment of sovereignty of the Gupta King' कर दिये जाने के आधार पर बनर्जी ने हस्तिन को गुप्तों का *माण्डलिक* (सामन्त) बताते हुए लिख दिया कि उसने और उसके पुत्र संक्षोभ ने गुप्त सम्राट की प्रभुसत्ता की अवहेलना करते हुए अपने नाम से ताम्रपत्र लेख जारी करना प्रारम्भ कर दिया।

महाराज हस्तिन के वर्ष 156 के खोह ताम्रपत्र लेख में भगवान महादेव के नमन के बाद *'षट्पञ्चाशोत्तरेऽब्दशते गुप्तनृपराज्य भुक्तौ'* उत्कीर्ण है। इसी प्रकार उसके अन्य अभिलेखों में भी दानपत्र को जारी करने के वर्ष को शब्दों में लिखने के तुरन्त बाद *'गुप्तनृपराज्य भुक्तौ'* अंकित है। उल्लेख्य है कि हस्तिन ने अपना कोई संवत् प्रचलित नहीं किया था। अतः उसने पहले से चले आ रहे 'गुप्त संवत्' का अपने अभिलेखों में प्रयोग किया है। उसके ताम्रप्तर लेखों में उनको जारी करने के वर्ष को अंकित करने के क्रम में *'गुप्तनृपराज्य भुक्तौ'* का तात्पर्य गुप्त शासकों के राज्य-भोग का वर्ष बताना है अर्थात् उनके द्वारा प्रचलित संवत् (गुप्त संवत्) का उल्लेख मात्र करना है, न कि गुप्त प्रभुसत्ता के नियन्त्रण में शासन करने का। अतः गुप्त शासकों के संवत् का उल्लेख कर देने मात्र से यह प्रमाणित नहीं हो जाता कि हस्तिन गुप्तों के अधीन उनका *माण्डलिक* (सामन्त) था।

इसी क्रम में यह भी ध्यातव्य है कि हस्तिन के वर्ष 156 के ताम्रपत्र लेख में *'महावैशाख संवत्सर कार्तिक मास शुक्लपक्ष तृतीया,* वर्ष 163 के ताम्रपत्र लेख में' *'महाश्वयुज संवत्सर चैत्र मास शुक्लपक्ष द्वितीया'* वर्ष 170 के ताम्रपत्र लेख में *'महाज्येष्ठ संवत्सर फाल्गुन मास शुक्लपक्ष पंच दश्यां (पूर्णिमा)'* और वर्ष 191 के ताम्रपत्र लेख में *'महाचैत्र संवत्सर माघ मास बहुल पक्ष तृतीया'* अंकित है। यदि अभिलेखों में केवल संवत्सरों के नाम, मास, पक्ष और तिथि का ही उल्लेख किया गया होता तो उनको जारी करने का समय (वर्ष) ज्ञात नहीं हो पाता। अतः समय की गणना हेतु हस्तिन के अभिलेखों में तत्कालीन प्रचलित *गुप्त संवत्* का उल्लेख किया गया है और इसी आधार पर भारतीय इतिहास में महाराज हस्तिन का समय निर्धारित किया जाता है।

हस्तिन के ताम्रपत्रलेखों की तिथि से प्रमाणित है कि उसने वर्ष 156 से 191 के बीच कुल 35 वर्ष तक शासन करते हुए समयानुसार दान दिया था। उसके अभिलेखों में उसे अनेक युद्धों में विजयी और सहस्रों गायें, हाथी, अश्व और भूमि आदि *(गोसहस्रहस्त्यश्व-*

हिरण्यानेक भूमि प्रदेन गुरुपितृमातृ पूजा-तत्परेणात्यन्त देवब्राह्मण भक्तेन। नैक समरशत विजयिना) का दान देने की बात कही गयी है। इससे यह ध्वनित होता है कि वर्ष 156 में ताम्रपत्र लेख उत्कीर्ण कराने के पूर्व ही उसने कोई विजय की होगी और उसके बाद दान दिया था। इससे ज्ञात होता है कि वर्ष 156 के पूर्व से हस्तिन का शासन प्रारम्भ हो चुका था। इसी प्रकार वर्ष 191 में उत्कीर्ण उसके ताम्रपत्र लेख और वर्ष 209 में संक्षोभ के ताम्रपत्र लेख के बीच 18 वर्ष का अन्तराल है और इस अवधि में किसी अन्य शासक की जानकारी प्राप्त नहीं होती। अतः यह स्वाभाविक रूप से अनुमान किया जा सकता है कि हस्तिन का शासन वर्ष 191 के बाद भी कुछ वर्ष तक और रहा होगा। इस प्रकार हस्तिन का शासन कम से कम 40-45 वर्ष रहा था, किन्तु गुप्त सम्राट् ने उसके द्वारा मनमाने ढंग से दान देने और अपने नाम से ताम्रपत्र जारी करने पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया था। इससे स्पष्ट है कि हस्तिन उनके अधीन न होकर स्वतन्त्र शासक था। क्योंकि गुप्तों के अधीन होकर गुप्त सम्राटों की ही भाँति प्रभूत मात्रा में दान देने और ताम्रपत्र देने की बात समझ में नहीं आती।

महाराज हस्तिन तथा महाराज शर्वनाथ के भूमरा प्रस्तर स्तम्भ लेख में हस्तिन के राज्य की सीमा में आम्लोदग्राम तथा शर्वनाथ के भूमि-भोग की सीमा उत्कीर्ण है। इससे स्पष्ट है कि इस अभिलेख में महाराज हस्तिन के राज्य की सीमा का उल्लेख है, न कि गुप्त साम्राज्य की सीमा का। इससे प्रमाणित होता है कि *हस्तिन स्वतन्त्र शासक* था, न कि गुप्तों के अधीन उनका *माण्डलिक* (सामन्त)। महाराज हस्तिन को उनके अभिलेखों में अनेक युद्धों में विजयी बताया गया है, जिसमें उसने अपने राज्य के विस्तार एवं सुरक्षा हेतु युद्ध किया होगा। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि गुप्त सम्राटों की ओर से उसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। महाराज हस्तिन के अभिलेखों में *अमात्य, महासान्धिविग्रहिक एवं महाबलाधिकृत* आदि अधिकारियों का नाम उनकी वंशावलियों के साथ उत्कीर्ण हैं जिनकी नियुक्ति हस्तिन ने अपनी सुचारु शासन-व्यवस्था के लिए की थी। यदि हस्तिन गुप्त सम्राटों का *माण्डलिक* (सामन्त) रहा होता तो उसे *महासान्धिविग्रहिक* एवं *महाबलाधिकृत* आदि अधिकारियों की नियुक्ति की क्या आवश्यकता थी?

हस्तिन के पुत्र महाराज संक्षोभ को उसके खोह ताम्रपत्र लेख में सहस्रों गायों, हाथियों, अश्व, सुवर्ण और प्रचुर भूमि का दान करने वाले, अपने गुरु तथा माता-पिता का सम्मान करने में तत्पर, देवता तथा ब्राह्मणों के परम भक्त, सैकड़ों युद्धों में विजयशील, उत्तराधिकार में प्राप्त डभाल (डहाल) राज्य के साथ 18 आटविक राज्यों में सम्मिलित समस्त प्रदेश पर समुचित शासन करने वाले तथा प्रभूत सुन्दर गुणों से सुविज्ञात यश वाले हस्तिन का पुत्र बताया गया है -- *'गोसहस्रहस्त्यश्वहिरण्यानेक भूमि प्रदस्य गुरु पितृ मातृ पूजा तत्परस्यात्यन्तदेव ब्राह्मण भक्तस्यानेक समरशत विजयिनः साष्टादशाटवी राज्याभ्यन्तर डभा (? हा) लाराज्यमन्वयागतं समडि पालयिष्णोरनेक गुणविख्यातयशसो महाराज श्री हस्तिनः सुतेन'।*

हस्तिन को उत्तराधिकार में प्राप्त डभाला (डहाला= डाहल) राज्य के अतिरिक्त 18 आटविक राज्यों पर शासन करने की बात महत्वपूर्ण है। अभी तक हस्तिन के अभिलेख मध्यप्रदेश में खोह एवं मझगवाँ से ज्ञात थे, किन्तु अब उत्तर प्रदेश के झाँसी जनपद में बेतवा नदी के तट पर स्थित एरच से उसका एक ताम्रपत्र मिल जाने से पता चलता है कि हस्तिन का शासन मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड के क्षेत्र पर भी था जो तत्कालीन आटविक राज्यों में समाहित था।[8] इससे हस्तिन के साम्राज्य एवं उसकी उपलब्धियों तथा राजनीतिक स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया

जा सकता है।

महाराज हस्तिन एवं उसके पुत्र महाराज संक्षोभ ने भी अपने ताम्रपत्र लेखों में दान देने के बाद यह कहा है कि मेरे वंशजों एवं सामन्तों द्वारा भविष्य में भी इन दानों में व्यवधान उत्पन्न नहीं किया जाय और यह आदेश दिये जाने पर जो अन्यथा व्यवहार करेगा, उसे मैं दूसरा शरीर धारण कर लेने पर भी निर्ममतापूर्वक नष्ट कर दूँगा-- *"अस्मात्कुलोत्थैर्म्मत्पादपिण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः करणीयः। एवं माज्ञाप्ते योऽन्यथ कुर्यात्तमहं देहान्तर गतोऽपि महावद्धयानेन निर्द्दहेयम्।"*

इससे स्पष्ट है कि *महाराज हस्तिन एवं महाराज संक्षोभ स्वतंत्र शासक* थे जिनके स्वयं के *माण्डलिक* (सामन्त) भी थे। अतः उन्हें गुप्तों का *माण्डलिक (सामन्त)* कहा जाना ऐतिहासिक त्रुटि है, जिसका संशोधन आवश्यक है, क्योंकि स्वतन्त्र शासकों को किसी के अधीन बता देना उनकी गरिमा के विपरीत है।

संदर्भ

1. Cunningham, A : Archaeological Survey of India Report, Vol.IX, p.11; Fleet, J.F. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III, p.93-100. **2.** Cunningham, A : Archaeological Survey of India Report, Vo. IX, p.11-12; Fleet, J.F. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol., III, p.100-105. **3.** श्रीवास्तव, ओम प्रकाश लाल : एरच के अभिलेख एवं सिक्के, ब्रजसंस्कृति शोध संस्थान, वृन्दावन, 2019 पृ.-30-32; Erach Rediscovered : Coins, Inscriptions, Seals and Sealings Rajgor's Heritage Hub: Mumbai, 202, p.-37-38. **4.** Cunningham, A : Archaeological Survey of India Report, Vol. IX, p.13-14; Fleet, J.F. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol., III, p.106-109. **5.** Cunningham, A : Archaeological Survey of India Report, Vol. IX, p.8-9; Fleet, J.F. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol., III, p.110-112. **6.** Cunningham, A : Archaeological Survey of India Report, Vol. IX, p.15; Fleet, J.F. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol., III, p.112-116. **7.** Banerji, R.D. The Age of Imperial Guptas, Banaras HIndu University, 1933, p.63-64, डॉ. बनर्जी का यह मत 1933 में प्रकाशित हुआ था, जिसका अनुकरण अभी तक किया जा रहा है, किन्तु यह उचित नहीं है। **8.** पादटिप्पणी नं. 3।

12/1,ए, मोतीलाल नेहरू मार्ग
बेलवीडियर प्रेस कम्पाउण्ड,
प्रयागराज-211002 (उ.प्र.)
मो.- 9125049410, 7355228322
ई-मेल : oplalsrivastava@gmail.com

●

कर्म पूजा बने

घर से मंदिर है बहुत दूर चलो यों कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हंसाया जाये।

कवि की इस सादगी से कही बात यदि सध जाए तो जीवन ही बदल जाए।

हम पूजा, आराधना या नवधाभक्ति के विविध रूपों में अपने को खोए, भूले रहते हैं और भूल जाते हैं-- सामने हैं-- पूजा के जीवंत स्वर्णिम अवसर। इनको यदि अपना लें तो कहीं जाने की जरूरत नहीं।

पहला काम है-- अपने को भी हंसाना। अपने को खुश रखना प्रभु-सेवा है। घर गृहस्थी में प्रभु का दर्शन करना, पास पड़ोस के दुख-दर्द में शामिल होना, राह भूले लोगों को राह बताना, किसी निराश व्यक्ति को दो मीठे बोल सुनाना, किसी गिरे को उठाना, किसी अच्छे काम के लिये किसी की पीठ थपथपाना-- ये भगवद्सेवा के विविध रूप हैं।

हमारे सभी काम पूजा हैं-- शर्त है-- इनमें अहंकार न हो, इनमें पाने का भाव न हो, अपने को लुटाने का रस भरा हो। जो भी हम करें-- वह भाव से करें-- 'स्वाहा' का स्वर निनाद हो-- 'सु-आहा!' चलो यों कर लें।

- पं. अक्षयचंद्र शर्मा

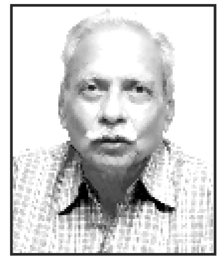

सवाई जयसिंह का राज्य विस्तार

डॉ. आनन्द शर्मा

आम्बेर के राजा बिशनसिंह की मृत्यु के बाद 25 जनवरी, सन् 1700 को तेरह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे जयसिंह को विरासत में तीन हजार वर्ग मील का राज्य मिला था। किन्तु 21 सितम्बर, सन् 1743 को 55 वर्ष की आयु में दिवंगत होने तक इसमें सात गुना वृद्धि हो चुकी थी। उसके 43 वर्ष 8 माह 7 दिन के शासनकाल में आम्बेर राज्य का क्षेत्रफल बीस हजार वर्ग मील हो गया था। जयसिंह के साहस, शक्ति और कूटनीतिक कौशल ही इस अभूतपूर्व विस्तार में सहायक बने थे।

बादशाह अकबर के समय उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों द्वारा मुगल आधीनता स्वीकार कर लेने के बाद उनमें परस्पर युद्ध द्वारा, पड़ौसी राज्य का इलाका छीन लेने की स्थितियाँ पूरी तरह समाप्त हो गई थीं। अब राज्य अपने आपसी झगड़ों को स्वयं निपटा लेने के लिए स्वतंत्र नहीं रह गए थे। उनके मध्य किसी भी विवाद का अन्तिम निर्णायक बादशाह हो गया था जिसका फैसला सबके लिए बाध्यकारी होता था। किसी भी राजा का उत्थान-पतन बादशाह की इच्छा पर निर्भर करता था। बादशाह से प्राप्त जागीरें ही उनके राज्य विस्तार का एकमात्र माध्यम रह गया था।

औरंगजेब के बाद बादशाह बने बहादुरशाह के साथ, उसकी स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध हुए संघर्ष में विजयी हो जाने के बावजूद, उसके जीवनकाल में जयसिंह लगभग उपेक्षित ही रहा। जयसिंह की शर्तों पर समझौता करने के लिए विवश हुआ बहादुरशाह आजीवन उससे नाराज ही रहा। अपने पाँच वर्ष के शासनकाल में उसने 18 जनवरी, 1709 को परगना देवती संचारी में 93,77,486 दाम की जागीर का एकमात्र परवाना जारी किया था।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद से निरन्तर कमजोर हो रही मुगल सत्ता का लाभ उठाने में जयसिंह ने कोई प्रमाद नहीं किया। सन् 1712 में बहादुरशाह की मृत्यु से सन् 1748 में मुहम्मदशाह की मृत्यु तक के 36 वर्षों में बादशाह तो पाँच बने, लेकिन 29 वर्षों (सन् 1719 से 1748) तक केवल मुहम्मदशाह ही बादशाह बना रह पाया था। फर्रुखसियर 6 वर्ष (सन् 1713 से 1719) और जहाँदारशाह 1 वर्ष (1712-13) तक बादशाह रहे थे। शेष दोनों बादशाह रफी उद-दरजात (28 फरवरी से 4 जून 1719) और रफीउद्दौला उर्फ शाहजहां द्वितीय (16 जून से 17 सितम्बर, 1719) क्रमशः 3-3 माह ही गद्दी पर रह पाये थे।

सन् 1707 से 1710 के लम्बे संघर्ष में बहादुरशाह को सामरिक और कूटनीतिक मोर्चों पर

खुली मात देने से मुगल दरबार से लेकर राजपूताना तक में हुई जयसिंह की प्रतिष्ठावृद्धि, निरन्तर कमजोर होती जा रही मुगल सत्ता में उसकी प्रभाववृद्धि का कारण बन रही थी। अपने पितामह आम्बेर नरेश मिर्जाराजा जयसिंह (प्रथम) की तरह सवाई जयसिंह भी उस स्थिति को प्राप्त होता जा रहा था, जिसमें किसी भी बादशाह के लिए उसकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं था।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में हुए उत्तराधिकार संघर्ष में जयसिंह की भूमिका से प्रभावित होकर जहांदारशाह ने सन् 1712 में परगना मोमिनाबाद (वृन्दावन) की 3,30,00,000 दाम की जागीर के बाद 11 नवम्बर, 1713 को खोरा सहित अहमदाबाद और इलाहाबाद सूबे उसे दे दिये। इसके साथ अप्रेल, 1712 में 7000/7000 की मनसब वृद्धि द्वारा उसे सन्तुष्ट करने का प्रयास भी किया था। सन् 1715 में सूबा अजमेर के परगना टोंक की 2,69,82,222 दाम की जागीर के बाद 19 नवम्बर, 1717 को अजमेर सूबे के उदई फौजदारी और 21 नवम्बर, 1715 को सूबा पंजाब में तलवाराना की 27,054 दाम की जागीर दी। 13 नवम्बर, 1717 को अकबराबाद सूबा में परगना हिण्डौन की 10,16,00,000 दाम की जागीर अलाउद्दीन खान से लेकर जयसिंह को हस्तानान्तरित की। 22 मई, 1712 को उसके द्वितीय पुत्र ईश्वरीसिंह को भी परगना फागी में 50, 39, 900 दाम की जागीर बहाल करने का परवाना भी जारी किया था।

'दाम' छोटी मुद्रा थी। चार दाम का एक रुपया होता था। जागीर की वार्षिक आय से उसका मूल्यांकन होता था। मुगल शासन क्षेत्र में अनेक भारतीय नगरों के इस्लामी नामकरण किये जा चुके थे। मगुल दरबार से जारी सभी हुक्मनामों में उनके इस्लामी नामों का उल्लेख ही किया जाता था। इनमें मथुरा को इस्लामाबाद, वृन्दावन को मोमिनाबाद, आगरा को अकबराबाद और वाराणसी को मुहम्मदाबाद नाम दिया जा चुका था।

जहांदाराशाह के बाद तो जागीरें मिलने की जैसे झड़ी ही लग गई। जयपुर राजघराना के महाराजा मानसिंह (द्वितीय) संग्रहालय में सुरक्षित परवाना (आदेश पत्र, हुक्मनामा), फरमान (राजादेश, शाही हुक्म, आज्ञा), खरीता (राजकीय आदेश पत्र), सनद (प्रमाण, सुबूत, सर्टिफिकेट), नविशत (लेखपत्र, स्टाम्प, लिखित) और इनाम दस्तावेजों के अनुसार जहांदाराशाह को हरा कर बादशाह बने फर्रुखसियर के अनुरोध पर दिल्ली और आगरा के बीच यमुना के विशाल दक्षिणी प्रदेश पर काबिज भरतपुर के जाट राजा चूड़ामन को दबाने में जयसिंह के अभियान से प्रसन्न फर्रुखसियर ने 12 दिसम्बर, 1713 को सूबा अजमेर के परगना मोमिनाबाद में 4,07,39,900 दाम के बाद, 14 दिसम्बर, 1713 को परवाना जारी कर परगना खोरी में 1,97,09,909 दाम, 9 जनवरी, 1714 को सूबा इलाहाबाद में मुहम्मदाबाद (बनारस) में जयसिंह द्वारा बसाये जयसिंहपुरा की जागीर बरकरार रखने के बाद, उसने सन् 1715 में आम्बेर के पास देवती इलाका दिया। अगले वर्ष मालवा-विद्रोह के दमन की सफलता के लिए जयसिंह को 13 मार्च, 1716 को कामदार खिलअत, जडाऊ सरपेच और खासा घोड़ा द्वारा सम्मानित करने के बाद, 10 सितम्बर, 1716 को जारी दो राज्यादेशों में सूबा अजमेर के मालपुरा की 1,33,30,873 दाम की जागीर का फरमान और सूबा मालवा के परगना मोहम्मदपुरा की 1,60,00,000 दाम की जागीर का परवाना जारी किया। तेरह दिन बाद ही 23 सितम्बर को मालवा में 46,69,127 दाम के साथ परगना उज्जैन में 19,687 दाम की जागीर का परवाना भी जारी कर दिया। 3 नवम्बर, 1716 को परगना टोडाभीम, कामा, निवाई और लालसोट परगनों की फौजदारी के परवाने जारी किये। 2 अप्रैल, 1718 को परवाना द्वारा इनाम में मिले वृन्दावन और बिशनपुरा जयसिंह को बरकरार रखे। दो माह बाद ही 2 जून, 1717 को सूबा अबध में जयसिंह द्वारा अपना निजी पुरा, हवेली और कटला बसाने-बनाने के लिए 983 वर्ग गज जमीन दी। इसके साथ ही 5 जून, 1719 को अकबराबाद

सूबा में सरकार अलवर के अन्तर्गत 26,51,000 दाम का परगना कियारा उर्फ भानगढ़, वली मोहम्मद से जयसिंह को हस्तानान्तरित किया।

जयसिंह के पाटवी पुत्र शिवसिंह को भी मेवाती विद्रोहियों को दबाने के लिए 24 अक्टूबर, 1716 को सूबा शाहजहानाबाद के परगना हवेली और तिजारा चूडामन से लेकर उसे दे दिये। इसके साथ मथुरा की फौजदारी भी उसे मिल गई। जयसिंह के कहने पर उसके बहनोई राव बुद्धसिंह कोस उसका पूर्व में छीना गया राज्य बूंदी भी लौटा दिया गया था। इसे फरवरी, 1720 में कोटा के महाराव भीमसिंह ने बादशाह की अनुमति से उसे हरा कर जीत लिया था।

मुगल दरबार में सैयद बन्धु नाम से प्रसिद्ध वजीर अब्दुल्ला खां और छोटे भाई मीर बख्शी हुसैन अली का जबर्दस्त प्रभाव हो गया था। इन्हें नियंत्रित करने के प्रयास में उनके साथ बिगड़े सम्बन्ध अन्ततः फर्रुखसियर की दर्दनाक मृत्यु का कारण बने। जनानखाना से बाल पकड़ कर उसे घसीटते हुए उनके पैरों में गिरा देने के बाद उसे अन्धा करके एक तंग कोठरी में डाल दिया, जहाँ पानी के लिए मिट्टी का एक घड़ा मात्र था। दोनों समय रोटियां फेंक दी जाती थी। फिर 17-18 अप्रैल, 1719 की रात गला घोंट कर उसकी हत्या कर दी गयी।

जयसिंह के साथ सम्बन्ध खराब हो जाने के बाद सैयद बन्धुओं के सितारे गर्दिश में आ गए थे। बहादुरशाह के साथ हुए विग्रह के समय की ही तरह जयसिंह ने राजपूत, मराठा के साथ निजाम आदि शक्तियों को संगठित करते हुए 8 सितम्बर, 1720 को जयपुर के पास टोडाभीम में हुसैन अली की हत्या करवा दी। 3-4 नवम्बर को जयसिंह की भारी सैन्य सहायता पाकर बादशाह महुम्मदशाह ने हसनपुर युद्ध में अबदुल्ला खां को परास्त कर बन्दी बना लिया।

सैयद भाइयों के पतन के बाद जयसिंह का वास्तविक उत्कर्ष आरम्भ हुआ। 11 नवम्बर को दिल्ली के पास पहुँचे जयसिंह का बादशाह ने अपने नये वजीर मुहम्मद अमीन खां और उसके पुत्र को उसके डेरे पर भेज कर भव्य स्वागत किया। दरबार में 1-1 हजार अशर्फी और चाँदी के सिक्कों के साथ हाथी, मोतियों की माला, जडाऊ जमघर आदि अनेक उपहार दिए। मनसब के सवारों में 4 हजार की वृद्धि और 2 लाख दाम नकद को जयसिंह ने नम्रतापूर्वक लेने से इन्कार करते हुए हिन्दुओं से लिया जाने वाला जजिया कर समाप्त करने का अनुरोध कर दिया। इसे स्वीकार होना ही था। इसके लिए मेवाड़ महाराणा अमरसिंह ने 27 दिसम्बर, 1720 को पत्र लिख कर जयसिंह को बधाई दी थी।

इसके बाद जयसिंह की प्रभावृद्धि के अनुरूप ही जागीरों का तांता लगता गया। 23 मार्च, 1720 को जयसिंह द्वारा बसाये 19,687 दाम की पुरा की जागीर देते हुए मोहम्मदशाह ने 12 दिसम्बर, 1720 को शाही फकरा, जमघर और हाथी इनाम देने का फरमान जारी किया। इनके अतिरिक्त इस्लामाबाद में ही मौजा मोमिनाबाद के गाँव वृन्दावन की 1,75,500 की जागीर भी दी। मुहम्मदशाह ने सरकार अलवर परगना कियारा उर्फ भानगढ़ (सूबा अकबराबाद) की 19,34,00 दाम की एक और जागीर वली मुहम्मद से जयसिंह को ट्रांसफर की। 3 मार्च, 1721 को बादशाह मुहम्मदशाह ने सूबा अकबराबाद के परगना हिण्डौन और टोडाभीम की फौजदारी दी। 12 मार्च को सूबा अकबराबाद के परगना इस्लामाबाद में 17,600 दाम का इलाका इनाम में देने का फरमान जारी किया। 21 मार्च को सूबा अजमेर के मोमिनाबाद (वृन्दावन) की 6,61,96,632 दाम की जागीर दी। 3 मई को सूबा अजमेर में 32,00,000 दाम का परगना अमरसर कुँवर अभयसिंह को हटा कर जयसिंह को दिया। जयसिंह को प्रसन्न रखने के लिए उसने उसके वकील के आवेदन पर ही 4 जून, 1721 को हिन्दू की मृत्यु हो जाने पर उसकी जायदाद में किसी प्रकार का दखल न देने का आदेश भी दे दिया था।

1 मार्च, 1722 को परगना मलारना की 44,27,054 दाम की जागीर का परवाना जारी करने के बाद, 22 अप्रैल, 1722 को सूबा अकबराबाद में 17,51,00 दाम

का कियारा उर्फ भानगढ़ परगना आलमखान को हटा कर जयसिंह को दे दिया। सन् 1722 में अकबराबाद (आगरा) की सूबेदारी और इस्लामाबाद (मथुरा) की फौजदारी देते हुए मनसब में 4600 सवारों की उन्नति देकर उसे सातहजारी (7-7 हजार सवार और जात अर्थात् पैदल) कर दिया। मुहम्मदशाह महाराजा जयसिंह से कितना प्रभावित था, यह इसी वर्ष 16 दिसम्बर को भेजे फरमान से सिद्ध हो जाता है। इसमें उसने उसकी सेवाओं और वफादारी की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि तुम्हारी सेवाओं की प्रशंसा शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। बादशाह की प्रसन्नता का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि इसके पाँच दिन बाद ही 21 दिसम्बर को सूबा अकबराबाद, सरकार अलवर के परगना खोरी में 1 करोड़ दाम की जागीर भी उसे दे दी।

11 जनवरी, 1723 को सरकार अलवर में 38,25,997 का परगना खोरी दिया। 15 अप्रेल को सूबा अजमेर में परगना नरायना की 32,31,550 दाम की जागीर अलादीन खान को हटा कर दी। 17 अप्रैल को जयसिंह की सिफारिश पर उसके बनहोई बुद्धसिंह को परगना बूंदी की, कोटा महाराव भीमसिंह द्वारा छीन ली गई 2,13,30,00 दाम की जागीर उसके पुत्र अर्जुन सिंह को बेदखल कर प्रदान की। 23 अप्रैल को सूबा अकबराबाद में परगना खोरी की 1 करोड़ दाम की जागीर इनाम में दी (खोरी के बारे में अनेक फरमान मलने का अर्थ उक्त परगना के अन्तर्गत समय-समय पर भू-भाग दिये जाने प्रतीत होते हैं)। 1 मई, 1723 को सूबा अजमेर सरकार मोमिनाबाद में अमरसर की जागीर दी। 11 सितम्बर, 1723 को सूबा अजमेर, सरकार मोमिनाबाद में 1 करोड़ 20 लाख का परगना टोंक, सैयद नुसरत यार खान से जयसिंह को हस्तानान्तरित किया। इसी दिन मोमिनाबाद में ही 6,61,96,632 दाम की एक अन्य जागीर भी दी। इसी वर्ष उसने चूडामन के आतंक से सावधान रह कर उसे जिन्दा पकड़ने का फरमान भी जारी किया था। अगले दिन 12 सितम्बर को अकबराबाद स्थित जयसिंहपुरा के पास नया बाग लगाने के लिए जमीन देते हुए भविष्य में उसमें किसी भी प्रकार हस्तक्षेप न करने का आदेश जारी किया। दो दिन बाद ही 14 सितम्बर, 1723 को सूबा अजमेर के सरकार मोमिनाबाद में अमरसर की 32,00,000 दाम की जागीर भी जयसिंह को दी।

एक अन्य फरमान में मुहम्मदशाह ने जयसिंह के समय पर उसके पास सेनासहित पहुंच जाने के लिए धन्यवाद देते हुए स्वतंत्र विचरण कर रहे चूडामन को जल्दी ही कैद कर लिये जाने की आशा व्यक्त की थी। बादशाह के हस्ताक्षर से भेजे, बिना तारीख के इस फरमान में सख्त नाकाबन्दी में चूडामन के साथ हुई भिड़न्त के समाचार जान कर जयसिंह को 5 लाख रुपये स्वीकृत कर मोईजुद्दौला बहादुर की सलाह से चूड़ामन को जल्दी ही बन्दी बना लेने की आकांक्षा व्यक्त की थी। एक अन्य दस्तावेज के अनुसार जयसिंह के वकील श्रीव्यास पुत्र कमलनील व्यास ने इलाहाबाद में 3019 बीघा जमीन किसी मोहम्मद अहसान से 500 शाहजहानी सिक्कों (रुपयों) में खरीदी थी।

1 फरवरी, 1724 परगना रायना कुँवर देवीसिंह, लालसिंह और सूरजसिंह से लेकर जयसिंह को दिया। 18 फरवरी को जारी फरमान द्वारा अहमदाबाद की सूबेदारी जोधपुर महाराजा अजीतसिंह से लेकर जयसिंह को दे दी। अजीतसिंह जयसिंह के श्वसुर भी थे। मुहम्मदशाह ने 3 मार्च, 1724 को अलवर सरकार में परगना खेरी की 20,55,412 दाम की जागीर दी। इसके चार माह बाद ही 31 जुलाई को नविश्त द्वारा परगना प्रागपुरा में हसनपुरा, खोरी, प्रागपुरा और पावटा की जमींदारी भी उसे दे दी। 6 अक्टूबर, 1725 को सूबा अजमेर में 11,00949 दाम का परगना मनोहरपुर अब्बास अली खान को हटा कर देते हुए 23 नवम्बर, 1725 को सभी करों से मुक्त 74,600 दाम के ग्राम बिशनपुरा की जागीर इनाम में दी। 22 अप्रैल, 1726 को 32,16,550 दाम के परगना नारायना में 95,000 दाम की जागीर देने के एक माह बाद ही 7 फरवरी, 1727 को परगना अमरसर में 15,13,720 दाम जागीर का परवाना

जारी किया था। इसी वर्ष 18 नवम्बर को जयसिंह ने अपने राज्य के विस्तार के अनुरूप राजधानी बनाने के लिए जयपुर की नींव रखी।

14 जून, 1729 को गया में मोहम्मद अकील खान को हटा कर मुहम्मदशाह ने 1,80,000 दाम की जागीर का परवाना जारी किया। अगले माह 29 जुलाई, 1729 को अमरसर परगना में ही 5,00,000 दाम की जागीर का परवाना जारी किया। 8 सितम्बर, 1729 को परगना गया (सूबा बिहार) की 10,11,500 दाम की जागीर दी, जिसे बाद में 11 फरवरी, 1732 को स्वतन्त्र फौजदारी में बदल दिया। अकबर के काल में जयसिंह के पूर्वज राजा मानसिंह ने बिहार के सूबेदार पद पर रहते हुए गया को अफगानों-पठानों के आतंक से मुक्त करवा कर, भव्य मन्दिरों के निर्माण द्वारा उसकी श्रीवृद्धि की थी। मुहम्मशाह ने 8 मई, 1732 को गया में 1 लाख दाम की जागीर देने के चार माह बाद 28 सितम्बर, 1732 को मालवा की सूबेदारी और मंदसोर की फौजदारी दिये जाने का फरमान भी जारी किया। जयसिंह को सन्तुष्ट रखने के लिए बादशाह ने 31 अगस्त, 1732 को हिन्दुओं से गंगा स्नान में लिया जाने वाला टैक्स भी पूरी तरह हटा दिया। 29 मई, 1733 को सूबा बिहार में परगना गया की 4,00,000 दाम की जागीर का परवना जारी किया। 7 नवम्बर, 1734 को परवाना द्वारा, जयसिंह को पहले से मिली हुई 20,13,720 दाम की जागीर का नवीनीकरण किया।

बादशाह जयसिंह से इतना प्रभावित था कि उसके विश्वस्त आनन्दराम बांकावत का देहान्त हो जाने पर उसके पुत्र गोविन्दराम को 24 नवम्बर, 1734 को दो जागीरों के फरमान जारी किये थे। एक में सूबा अकबराबाद में 47,48,067 दाम और दूसरे में सरकार नारनौल के परगना गनवारी में 10,03,241 दाम की जागीरें थीं। 22 जुलाई, 1738 को जयसिंह को इस्लामाबाद (मथुरा) की फौजदारी देते हुए इनाम में 80 लाख दाम भी दिए।

मार्च, 1739 में नादिरशाह के दिल्ली नृशंस कत्लेआम द्वारा दिल्ली की गलियां रक्तरंजित करके तख्तेताउस के साथ भारी भरकम दौलत लेकर लौट जाने के बाद ही मुहम्मदशाह चैन की साँस ले पाया था। 57 दिन के दिल्ली प्रवास के दौरान बादशाह को उसने नजरबन्द जैसा रखा था। नादिरशाह के दिल्ली से आगे बढ़ने की स्थिति में उसका मुकाबला करने के लिए जयसिंह ने मराठों और बुन्देलों के साथ मिलकर 1 लाख 25 हजार की सेना तैयार कर ली थी। इस शक्ति प्रदर्शन से बड़ा मुकाबला होने की सम्भावना के कारण अपनी विजय के प्रति आशंकित नादिरशाह दिल्ली से ही लौट गया। इसी वर्ष 15 सितम्बर को मुहम्मदशाह ने परगना मनोहरपुर की 55,91,911 दाम की जागीर राव जसवन्तसिंह से लेकर जयसिंह के द्वितीय पुत्र ईश्वरीसिंह को दी।

29 जून, 1740 को अकबराबाद (आगरा) में 1,30,00,000 दाम व निजामत और फौजदारी इनाम में देते हुए जयसिंह के मनसब में 3 हजार सवार की वृद्धि भी की। 22 जून, 1741 को लाहौर आदि छह परगनों की जमींदारी अनिरुद्ध को हटा कर जयसिंह को दी। इसके दो वर्ष बाद 21 सितम्बर, 1743 को 55 वर्ष की आयु में जयसिंह का देहान्त हो गया। उसके बाद महाराजा बने ईश्वरीसिंह को अपने शासन की रजत जयन्ती वर्ष की खुशी में मुहम्मदशाह ने 21 जून, 1744 को बंगाल में जागीर दी।

सन् 1748 में मुहम्मदशाह के देहान्त के बाद बादशाह बने अहमदशाह (सन् 1748-54) ने 19 दिसम्बर, 1754 को जयसिंह के बाद राजा बने ईश्वरीसिंह को हरा कर राजा बने माधवसिंह (प्रथम) को सूबा अजमेर में रणथम्भोर किला मय तोपखाना और लवाजमा इनाम दिया। इस तरह जयसिंह ने अपने बाहुबल, बुद्धिबल से मुगल बादशाहों को प्रसन्न कर अपने राज्य का जबरदस्त विस्तार किया। मुगल दरबार में उसके प्रभाव का ही परिणाम था कि उसके उत्तराधिकारियों को भी इसका लाभ मिलता रहा।

645, किशोर कुँज, किशनपोल बाजार,
जयपुर - 302001
मो. : 9462312222

पुरावशेषों के दीवाने खोजक ओमप्रकाश 'कुक्की'

प्रो. (डॉ.) कहानी भानावत

अत्यंत साधारण परिवेश में ओमप्रकाश 'कुक्की' ने बिना डिग्री का बोझा लिए मात्र आठवीं पास की पढ़ाई कर जो कार्य किया वह पूरे विश्व में चौंकानेवाला है। राजस्थान के हाड़ौती एवं मेवाड़ अंचल की बनास तथा चंबल नदी के किनारे बसे पुरा-मानव की खोजों में उनके शताधिक स्थल सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं जो उनके कार्य की कीर्ति को अक्षुण्ण रखनेवाले हैं। पूरे विश्व में कुक्की अकेले ऐसे खोजक हैं जिन्होंने शैलचित्रों की इतनी गुफा-पट्टियां खोज निकालीं।

राजस्थान के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल प्राचीन बूंदी नगर में मेरी पहली नियुक्ति वहां के राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के चित्रकला विभाग में हुई। कॉलेज के सामने ही यू कॉलोनी में सन् 1907 से 2002 तक मेरा निवास रहा। वहीं मेरी भेंट कुक्की से हुई जिनकी किराणा की अति साधारण एक दुकान थी। खरीददारी के दौरान मुझे लगा कि दुकानदारी से अधिक दुकानदार श्री ओमप्रकाश कुक्की की रुचि पुरा-संपदा की खोज खबर में है। धीरे-धीरे उन्होंने बताना शुरू किया कि उनकी बचपन से ही पुरा-संपदा की खोज में रुचि रही। कुक्की ने बताया कि स्कूल की छुट्टी के बाद आसपास की टेकरियों पर चले जाते और अपनी दृष्टि नीची गढ़ाये कुछ-न-कुछ खोजा करते। इस खोज दृष्टि द्वारा कभी उन्हें लाख की चूड़ियाँ मणके, विविध आकार के रंग-बिरंगे टूटे-फूटे कांच के टुकडे, तो कभी ताम्र निर्मित छोटे-मोटे उपकरण मिलते। एक दिन उन्हें तांबे का एक ऐसा सिक्का मिला जिस पर कुछ अक्षर लिखे हुए थे। यह सिक्का उन्होंने अपने पिताजी को ले जाकर दिया और सारी घटना कह सुनाई। पिताजी की अच्छी हलवाई की दुकान थी। उन्होंने सोचा कि यदि उनके साथ रहकर यह हलवाईगिरी का काम सीख जाएगा तो इसका जीवन बन जायेगा किंतु यह तो अभी से ऐसे निर्जन स्थलों पर भटक रहा है जहां जाने की कोई हिम्मत नहीं करता और ऐसी जगह कई बार जीवन को भी खतरा रहता है, फिर यह तो बच्चा है और ऐसी आलतू-फालतू चीजें घर में लाकर कबाड़ा इकट्ठा करता है जो वैसे भी अपशकुनी है, निर्जन स्थानों में प्रेतात्माओं का भी वास रहता है इसलिए वहां कोई जीवित प्राणी जाने का साहस नहीं करता। ये सब बातें कुक्की के पिता के मन में उमड़ती-घूमड़ती ये उन्हें इतना गुस्सा दिला गई कि उनका पारा चढ़ आया और चप्पलों से कुक्की की अच्छी खासी धुनाई कर दी।

कुक्की ने बताया कि पिताजी की इस नसीहत के बावजूद भी मैं उन निर्जन स्थानों की ओर जाता रहा। पिताजी परेशान होते रहे और मेरे सच बोलने पर भी उनका पारा यथावत बना रहता। इस तरह ऐसी पिटाई मेरी होती रही और मैं मार खाने का अभ्यस्त हो गया। इस घटना से कुक्की पर कोई खास असर नहीं हुआ। वे पिटते रहे लेकिन उनकी खोज जारी रही। एक समय ऐसा आया जब पिताजी की दुकान भी चौपट हो गई और कुक्की घोर गरीबी में आ गये, स्कूल की छोटी सी पढ़ाई भी वे इसीलिए ढंग से नहीं कर पाये। वे बताते हैं कि छठी, सातवीं और आठवीं की पढ़ाई उन्होंने बड़े अभाव में पास की। पढ़ने में बहुत अच्छे थे मगर कभी किताबों का अभाव रहा तो कभी कॉपी-पेंसिल का। कभी स्कूल जाने के व्यवस्थित कपड़े नहीं रहे। इस कारण तीनों कक्षाएं अलग-अलग स्कूलों से उत्तीर्ण की मगर पुरावशेषों की खोज की ललक ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और वे घर के काम धंधे को चौपट करते रहे।

पढ़ाई की दृष्टि से 'करत-करत अभ्यास को जड़मति होत सुजान' कहावत आगे शिक्षा पाने की दृष्टि से तो उनके लिए व्यर्थ हो गई किन्तु 'जिन खोजा तिन पाईयां' कहावत उनके मन में गहरी पैठ गई। इस बीच वे विवाह लायक हो गये और उनकी शादी दिल्ली में हो गई। कुक्की बताते हैं कि कहां तो घोर गरीबी और कहां जब मैं बड़े ठाठ से बारात लेकर विवाह करने गया। बारातियों को साथ ले गया और पुनः आकर पूरे समाज को प्रीतिभोज के लिए आमंत्रित किया। यह सब मेरे लिए चमत्कारिक और अचरज भरा पक्ष रहा। इसे मैं जीवन में कभी नहीं भूल पाऊंगा। इसके पीछे प्रभु द्वारकाधीश की असीम कृपा ही मैं मानता हूं जिन्होंने ये सब करिश्मा कर दिखाया। यहां यह पक्ष स्मरणीय है कि गरीबी के कारण कुक्की को समाज में भी चैन से नहीं रहने दिया गया। तरह-तरह के तानें और उलाहनें सुनकर भी वे किंचित भी विचलित नहीं हुए और उनका दृढ़ मन प्रभु द्वारकाधीश की साक्षी को लिए अपनी खोज में लगा रहा।

पहाड़ों पर रंगीन पत्थर खोजने वाले एक पड़ोसी ने भी उनके मन में कुछ खोजने की प्रेरणा जागृत की थी। एकबार वे बूंदी बाईपास मार्ग के ऊपर पहाड़ी पर बनी मोरड़ी की छतरी पर घूमने गये तो दो मुद्राएं मिलीं। मीरा साहब की पहाड़ी पर शीशे की बंदूक की गोलियां मिलीं। ऐसी ही गोलियां कोटा के पास स्थित भड़कगा के माताजी मंदिर के पास शिकारगाह के नजदीक मिली। ऐसी खोज ही आगे जाकर उनके जीवन में मील का पत्थर साबित हुई।

यह कोई 1966 का समय रहा होगा जब उनकी जिज्ञासा बलवती हुई और वे निरंतर पुरा-संपदा की खोज में दौड़ते-भटकते रहे। उन्होंने बताया कि 1978 से 88 की खोजबीन कर अच्छा संग्रह किया फिर वे पुरा-संपदा से जुड़ी अन्य खोज में निकले। दिल्ली का नेशनल म्युजियम देख उनके काम करने की दिशा ही बदल गई। वहां अलग-अलग काल के पुरावशेषों की जानकारी उनके लिए बड़ी उपयोगी बनी। जब भी दिल्ली जाते वहां जरूर जाते। अपने द्वारा प्राप्त शोध उपकरणों को अपने साथ ले जाते और वहां के अधिकारियों से संवाद कर समाधान पाते। एकबार एक अलभ्य ताम्र सिक्का उन्होंने बताया तो अधिकारी बोले, इसे हमारे यहां जमा करा दो या फिर लिख कर दो कि इसे अपने पास ही सुरक्षित रखोगे, इसका व्यवसाय नहीं करोगे। उन्होंने उस सिक्के को अपने पास ही रखने का लिख कर दे दिया।

बूंदी जिले में दूर-दूर तक फैली पर्वतमालाओं तथा उनमें स्थित देवस्थलों, पहाड़ी नालों नदी किनारों के टीलों पर उन्हें अनेक परतों में पुरा-संपदा मिली। प्राचीन मुद्राओं के चांदी, तांबे, सीसे तथा मिश्र-धातु के सिक्कों के साथ ही पहाड़ी गुफाओं में शैलचित्र भी मिले। पक्की मिट्टी के बर्तन-खिलौने भी मिले। बूंदी के आसपास के क्षेत्रों-रामेश्वर महादेव के पहाड़ी नाले, खटकर, दुर्वासा, सथूर, झर महादेव, लोईचा खजूरी

का नाला, बाणगंगा, शिकार बुर्ज आदि प्राचीन स्थानों, खंडहरों, नदी किनारों के टीलों व पहाड़ी स्थलों में जो मुद्राएं मिली वे लोदी वंश व राजपूत कालीन हैं। कुछ मुद्राएं खिलजी वंश, सामंत देव, माण्डु के सुल्तान तथा मुगलकाल की हैं।

5 अक्टूबर 1955 को जन्मे ओमप्रकाश जो कुक्की नाम से ही जाने आते हैं, ने सन् 1993 में घोड़ा पछाड़ नदी के किनारे नामणा के टीले में लाल-काले रंग के मिट्टी के बर्तनों और खिलौनों का पता लगाया जो ताम्रयुगीन सभ्यता के हैं। खजूरी का माला, कांजरी सीलोर, खेरुणा तालाब गांव आदि के पहाड़ी नालों से पाषाण युगीन उपकरण मिले जो लगभग पचास हजार वर्ष पुराने हैं। इनमें चोपर, हेंड एक्स, कलीवर, स्क्रेपर मुख्य हैं। उन्होंने बूंदी में अठारह ऐसे स्थान चिहि्न्त किये हैं जहां प्रागैतिहासिककालीन मानव लघु पाषाण उपकरणों को तैयार करता था।

सन् 1993 में खोज के गर्भ से कुक्की को पाषाणकाल से लेकर उत्तर पाषाणकाल व ताम्रमुगीन सभ्यता तक के अवशेष मिले। तांबे से बनी विभिन्न चीजें, पत्थर व पक्की मिट्टी के उपकरण व बर्तनों के टुकड़े, रंगीन पत्थर के मणके आदि भी मिले। यहीं से गर्दन से ऊपर की विभिन्न पशु आकृतियों के हिस्से, छोटे-बड़े पक्की मिट्टी के सींग, विभिन्न चित्रकारी युक्त टुकड़े मिले। विशेष उल्लेखनीय एक शेर-मुख मिला जो भूरे व काले रंग का पक्की मिट्टी का बना है।

पक्की मिट्टी की ही एक बड़ी गोली भी मिली। इसी टीले में हजारों साल पुरानी सभ्यता दफन है। बिजौलिया क्षेत्र की पहाड़ियों में प्रागैतिहासिक काल के शैलचित्र मिले। ये पाषाणकाल से धनुर्युग तक के हैं। अलग-अलग चट्टानों, गुफाओं में प्राप्त चित्रों में मानवाकृतियाँ बनी हुई हैं। इनका रंग लाल है। इससे करीब तीन किमी दूर स्थित 30 फीट लंबी और 15 फीट ऊंची चट्टानी गुफा में लाल, काले, गेरु, कत्थई रंगों के सैंकड़ों चित्र हैं। इनमें नील गाय, शेर, हिरण, वन्यजीव, मानवाकृतियां बनी हैं।

अक्टूबर 1997 में समेश्वर महादेव के पहाड़ी नालों में पहलीबार शैलचित्रों की खोज की फिर जून 98 में गरड़दा तथा जून 99 में समझर महादेव नामक धार्मिक स्थान पर एक गुफानुमा चट्टान में गेरुए रंग से निर्मित शैलचित्रों की खोज की। भौगोलिक दृष्टि से हाड़ौती का बूंदी संभाग बड़ा सख्त है। यहां पर्वतमालाएं, नदियां-नाले, पहाड़ी गुफाएं, मैदानी भाग सभी कुछ हैं। इन स्थलों में से कुछ स्थल कुक्की ने मुझे भी दिखाये जिन्हें देख में रोमांचित हो गई।

बूंदी और भीलवाड़ा जिले के करीब 125 किमी क्षेत्र में कुक्की द्वारा 30 अलग-अलग स्थानों पर शैलचित्रों की खोज की जा चुकी है। वहां लघुपाषाण उपकरण तैयार करने की कार्यशालाएं भी मिली हैं। इन कार्यशालाओं में कोर सर्वाधिक मात्रा में पाए गए हैं। इनसे साबित होता है कि ये चित्रित गुफाएं प्रागैतिहासिक काल के मानव की है। बूंदी के जैतसागर तालाब के पास स्थित गुमान बावड़ी क्षेत्र, शिकार बुर्ज के सरिया खाल, भीमलत, रामेश्वर, आकोदा का नाला, रावल का नाला, खटकड़, तलवास, काजरी, सिलोर, सालरिया, लोईचा, गरड़दा, दुर्वासा, देवझर आदि स्थानों पर खोजी गई उत्तर पाषाण कालीन सभ्यता को सिंधुघाटी एवं ताम्रयुगीन सभ्यता से भी पूर्व का माना जाता है जो ईसा से सात हजार वर्ष प्राचीन है। यही नहीं, साजीपुर के बालाजी के समीप बहने वाली मांगली नदी के किनारे टीले पर दो अति प्राचीन पाषाण के कुण्डे मिले हैं।

इन पाषाण उपकरणों से यह प्रतीत होता है कि यहां निवास करने वाला मानव अनाज पीसकर नहीं, कूटकर उदर पूर्ति करता था। इस स्थान पर अनाज कूटने के पत्थर के सिलबट्टे एवं पशुओं के शिकार करने में इस्तेमाल होने वाले हंटिंग बोल्स भी मिले हैं जो मानव सभ्यता के शिकार युग की पुष्टि करते हैं। किनारों पर दर्जनों प्राचीन बस्तियों के अवशेष भी मिले हैं जो ताम्रयुग से लेकर रियासतकाल तक की प्राचीन हैं।

शेरशाह सूरी काल के तांबे के सिक्के 1/2, 1/4, 1/8, 1/10/, 1/16, 1/20 और 1/40 अंश में पैसे के ढले हुए हैं। आधा पैसे के अलावा अन्य सभी सिक्के दुर्लभ हैं। इस काल में सिक्के दो तरह के हैं। एक वो जिनमें टकसाल का नाम अंकित है। दूसरे वो जिनमें टकसाल का नाम अंकित नहीं है। लेकिन यह निश्चित है कि पाया गया यह पहला अंशात्मक सिक्का अलवर टकसाल में ढला है और शेरशाह सूरी काल का है। 2600 वर्ष पुरानी पंच मार्कड मुद्रा लाखेरी के महुआ देवजी क्षेत्र में मिली। इससे प्रतीत होता है कि यहां पर कई राजाओं और सुल्तानों का शासन रहा है।

अपनी खोज जारी रखते इन्हें 16 अप्रैल 2024 को बूंदी से 65 किलोमीटर दूर नैनवा गांव के तालाब के पास एक छोटी पहाड़ी पर अलग-अलग संवत् के आठ निषिद्ध स्तंभ एक ही लाइन में बने हुए मिले हैं। ये स्तंभ संवत् 1000 से 1500 के समय के हैं। शायद बहुत सी पीढ़ियों के परिवारजनों ने जैन मुनियों की समाधि की स्मृति में अलग-अलग काल में इन्हें बनवाया गया है। इन सभी स्तंभों पर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां बनी हुई हैं और इन सबमें बड़ा स्तंभ आठ फीट का है। कुक्की बताते हैं कि कुछ इतिहासकार बूंदी का स्थापना काल सन् 1242 तो कुछ 1342 बताते हैं किन्तु इन मूर्तियों पर अंकित काल से बूंदी का इतिहास सन् 943 से बनता है जो इतिहासकारों के लिए बड़ी चुनौती है।

लोकजीवन में प्रचलित धारणा है कि पुरावशेषों की कोई वस्तु घर में घोर अनिष्ट लाती है और जब तक वो रहती है तब तक कोई भी परिजन चैन से नहीं रहने पाता। कुक्की ने जो पुरा वस्तुएं अपने घर में संग्रहित कर रखी थीं जब तक वे रहीं, घोर दुख, अनिष्ट, परेशानी और आपदा का कारण बनती रहीं। फलस्वरूप उन्होंने अपना सारा संग्रह जयपुर, कोटा तथा बूंदी के राजकीय संग्रहालयों को भेंट कर दिया। तब से वे सुख चैन से अपना जीवन बसर कर रहे हैं। पुरा सामग्री जो भी है वह संग्रहालयों की ही शोभा होती है।

लगातार खोजों के रहते सन् 2000 से लेकर अब तक कुक्की की खोजों ने जानकारों का ध्यान आकर्षित किया और यही वजह है कि उन्हें सन् 2001 में विश्व पर्यटन दिवस पर पर्यटन कला एवं संस्कृति विभाग जयपुर ने 2007 के गणतंत्र दिवस समारोह पर राजस्थान सरकार ने 2009 में जिला कलेक्टर बूंदी, 2010 में बारां की जिला स्थापना समारोह समिति, 2011 में जिला प्रशासन बारां द्वारा तथा 2015 में स्वाधीनता दिवस समारोह पर कोटा में एवं 2017 में हाड़ौती गौरव सम्मान से विभूषित किया गया है।

श्री ओमप्रकाश कुक्की (43, न्यू कालोनी बूंदी-राजस्थान-323001) द्वारा बूंदी भीलवाड़ा सहित हाड़ोती क्षेत्र में पुरातत्व संबंधी खोज कार्य एक नजर में -

1. हाड़ोती सम्भाग में प्रथम बार ताम्र युगीन (COPPERAGE) साइट्स की खोज जो अति महत्वपूर्ण खोज है (ग्राम नमाना जिला बूंदी राजस्थान, 4 दिसम्बर 1993।)।

2. मंदिर निर्माण करने की स्टोन वर्कशॉप, राज्य में प्रथम बार खोज (कमलेश्वर महादेव इन्द्रगढ़ जिला बूंदी)।

3. शैल चित्रों (ROCK ART) में पंच वृष्णि (वासुदेव श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, सांब, अनिरुद्ध एवं बलराम जी) के चित्र जो प्रथम बार प्रकाश में आये हैं, इसकी पुष्टी आर्किलियोजीकल सर्वे ऑफ इंडिया ने भी की है (खोज सन् 1998 नलदह जिला बूंदी राजस्थान)।

4. एक मुखी गुप्त कालीन शिवलिंग (मुखलिंग) जो अति दुर्लभ है (खोज सन् 1980 में है भीमलत जिला बूंदी)।

5. शैल चित्रों ने अश्वमेध यज्ञ की सेना साथ ही ब्राह्मीलिपि के लेख (खोज सन् 2009)।

6. शंख एवं ब्राह्मी लिपि के लेख नलदह धारवा

गोविन्दपुरा एवं नागरी शिला भीमलत क्षेत्र में भी हैं।

7. दो एकमुखी शिवलिंग लाखेरी के समीप ग्राम पाली चम्बल नदी के किनारे जिला बूंदी।

8. दो दर्जन लगभग प्राचीन मंदिरों की खोज जिला बूंदी एवं जिला भीलवाड़ा।

9. शुतुरमुर्ग के अण्डों के टुकड़े एवं छिलके खटखड़, अजेता, लोहरी, बागली, रेबारपूरा, मांजी का खाल, बालापुरा, भांडगवार, चाणदा इत्यादि क्षेत्रों में।

10. शैल चित्रों की 104 साइट्स का राष्ट्रीय कीर्तिमान।

11. विश्व की सबसे लम्बी शैल चित्र शृंखला जो 40 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में है।

12. अश्युलिन स्टोन टूल्स की साइट्स 1 दर्जन से भी अधिक।

13. मिडिल पेल्योलिथिक स्टोन टूल्स की साइट्स 1 दर्जन से भी अधिक।

14. मेसोलिथिक स्टोन अपरपेल्योलिथिक माइकोलिथिक की स्टोन टूल्स की सैकड़ों साइट्स की खोज - बूंदी बारां कोटा एवं टोंक जिलों में।

15. ऐतिहासिक पुरास्थलों की खोज सैकड़ों की संख्या में।

16. सम्वत 1084 से लेकर 150 वर्ष पूर्व के सैकड़ों शिलालेख इनमें नैनवा के स्तम्भ शिलालेख भी शामिल हैं।

17. मेगालिथिक मेनहिर कप मार्क्स की 2 दर्जन साइट्स (प्री हिस्टोरिक) बूंदी भीलवाड़ा एवं टोंक जिलों में।

18. भीलवाड़ा जिले कुम्हारिया ग्राम में ताम्र युगीन पुरास्थल की खोज।

19. बूंदी जिले के उतराना ग्राम में एक अतिप्राचीन किले (गढ़) की खोज।

20. चम्बल नदी के किनारे बीरज ग्राम में रिंग बेल की खोज।

21. भारत में हरे रंग के शैल चित्रों की खोज, खोजस्थल मोइकासुंडा, नसेणी, रामटोल, सांप की गाठ्यो, केली का नाला, कुरझर इत्यादि।

(पुरा वस्तुओं की निशुल्क भेंट राजकीय संग्रहालय रामनिवास बाग अल्बर्ट हॉल जयपुर तथा कोटा एवं बूंदी संग्रहालयों में।)

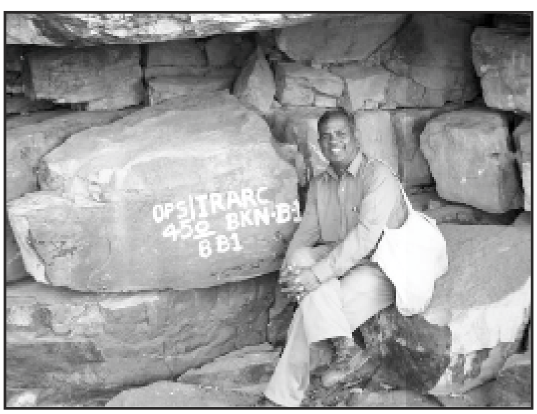

राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के बांका स्थान की रॉक आर्ट को निहारते ओमप्रकाश 'कुक्की'।

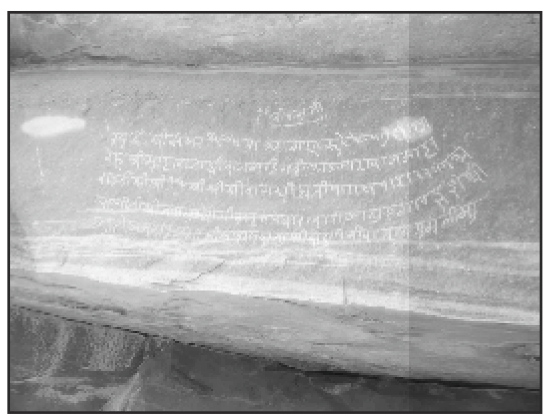

राजस्थान के कोटा जिले के भंवरकुंज कर शिलालेख।

राजस्थान के बूंदी जिले के नैनवां की पहाड़ी का शिलालेख, संवत् 1084।

राजस्थान के बूंदी जिले के नैनवां की पहाड़ी का शिलालेख, संवत् 1084।

राजस्थान के बूंदी जिले में नैनवां की पहाड़ी के शिलालेख, संवत् 1084।

बूंदी जिले के विभिन्न स्थलों की खोज के अन्तर्गत प्राप्त विविध धातु के सिक्के।

बूंदी जिले के गोलपुर के शैल चित्र।

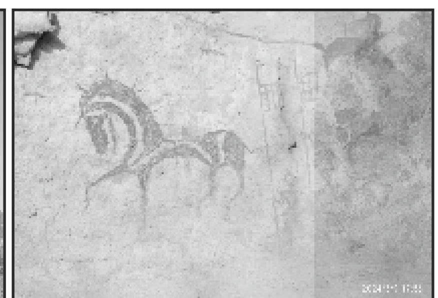

नैनवां की पहाड़ी का शिलालेख, संवत् 1084।

आचार्य, चित्रकला विभाग
(राजकीय मीरां कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)
16, वृंदावन धाम गली नं. 2, न्यू भूपालपुरा, उदयपुर
मो. 9460352480

●

कुछ रोचक मूर्तियां/मंदिर

1. खम्मम तेलंगाना का हनुमान मंदिर : यहाँ पर उनकी मूर्ति के समीप उनकी पत्नी (सूर्य पुत्री) की मूर्ति भी स्थापित है। बताया गया है कि जब वह सूर्य देवता से अनेक विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे तब एक विद्या के हेतु, विवाहित होना आवश्यक था। इसी कारण उन्होंने ऐसा किया था। **2.** हनुमान डांडी, बेट द्वारका : बेट द्वारका से 6 कि. मी. दूरी पर यह मंदिर स्थित है। हनुमान मूर्ति के समीप ही उनके पुत्र मकरध्वज की मूर्ति है, जिनका जन्म उनके पसीने की बूंद मादा मगरमच्छ के मुंह में गिरने के कारण हुआ था। यह बताया जाता है कि हुनमान मूर्ति जमीन में धंसती जा रही है और दूसरी मूर्ति ऊपर उठ रही है। **3.** गब्बूर, रायचूर (कर्ना.) का लक्ष्मी वेंकटेश्वर मंदिर : यह मंदिर 800 वर्ष प्राचीन है। इस विष्णु मूर्ति का अभिषेक उबलते पानी से करने पर, चरण पर पहुंचते ही पानी ठंडा हो जाता है। **4.** अलीगढ़ का हनुमान मंदिर : यहाँ उनका मुख गिलहरी जैसा है। **5.** मदुरै, तमिलनाडु का विष्णु मंदिर : विष्णु मूर्ति शुद्ध स्वर्ण से निर्मित है, जिसे 'अपरान्जों' कहते हैं। **6.** गढ़वा, झारखण्ड का बंशीधर मंदिर : मूर्ति 1280 किलो स्वर्ण से निर्मित है। राधा की मूर्ति अष्टधातु से बनी है। **7.** कराची (पाकिस्तान), की 1500 वर्ष प्राचीन पंचमुखी हनुमान की मूर्ति के सभी हाथों में आयुध हैं। एक पैर के नीचे मनुष्य सरीखी मूर्ति है। **8.** तमिलनाडु में एक कार्तिकेय मूर्ति के निर्माण में 9 प्रकार के जहर का उपयोग किया गया था, अभिषेक करने के उपरान्त नीचे गिरने वाले जल में रोग ठीक करने की क्षमता बताई जाती थी। **9.** महाराष्ट्र के पाटेश्वर महादेव के चार सिर एक दूसरे से जुड़े, एक सीध में हैं। **10.** तमिलनाडु के मंगलनाथ शिव की 1.8 मी. ऊँची नृत्य करती मूर्ति ऐसे पत्थर/चट्टान से बनी है, जिसमें से रत्न पन्ना प्राप्त होता है। समीप ही पन्ना रत्न से निर्मित शिव लिंग है, जिसे स्वर्ण पतरे से मढ़ा हुआ है। **11.** इण्डोनेशिया के बाली दीप में 'अयूम' नदी के किनारे की चुट्टान पर रामायण के अनेक प्रसंग उकेरे हुए हैं, जो कि उस समय के हैं, जब वहाँ पर हिन्दू शासक थे। **12.** अग्नि देव : मार्बल (संगमरमर) से निर्मित यह मूर्ति अत्यंत सुन्दर है। आसन के स्लैब के निचली ओर शंख पंक्ति उकेरी हुई है। अग्निदेव वस्त्र एवं आभूषण पहने हैं, जनेऊ भी दिख रहा है। उनके दायीं ओर दो सिर हैं,

दायीं ओर की बांह के निचले भाग से तीन अन्य बांहें निकली हुई हैं। पैर आसन मुद्रा में मुड़ा हुआ है, दूसरी ओर दो अन्य पाँव एक छोटी चौकी पर टिके/रखे हुए हैं। इस प्रकार इनके दो मुख, तीन पैर एवं सात हाथ हैं जो अग्नि की असमान उठती सात ज्वाला शिखाओं के प्रतीक है। सिर पर आकर्षक मुकुट भी है। **13.** वडपल्ली, नालगोंडा (तेलंगाना) के लक्ष्मी नरसिम्हा (विष्णु) : विशेषता यह है कि यह मूर्ति श्वास लेती है, जब दीपक मुख के समीप रखा जाता है उस समय उसकी लौ डोलने/ हिलने लगती है (जैसा कि हवा लगने पर देखा जाता है।) यह स्थान पांच नरसिम्हा क्षेत्र में से एक है। लक्ष्मी मूर्ति भी स्थापित है। मान्यता है कि इस नरसिम्हा (विष्णु) को ऋषि अगस्त्य किसी अन्य लोक से लाये थे, उनकी सुन्दर मूर्ति भी वहाँ रखी है। **14.** केशोरायजी (विष्णु), केशोरायपाटन, जिला बूंदी (राज.) : यहाँ पर विष्णु योग मुद्रा में बैठे हैं, उनके चार हाथ हैं। **15.** अनंतशयन विष्णु- ब्रह्मणि नदी के तट पर, ग्राम- सरन्ग, ढेनकानल, उड़ीसा : यह मूर्ति एक चट्टान को समतल कर 9 वीं सदी में उकेरी गई थी। चतुर्भुज मूर्ति का आकार वृहद् है है। नीचे की ओर के दो हाथों में शंख एवं चक्र हैं। दूसरे दो हाथ ऊपर की ओर उठे हुए हैं। **16.** वेंकटेश्वर, तिरुपति (आ.प्र.) : मान्यता है कि यह स्वयंभू मूर्ति है। बताया जाता है कि इस मूर्ति के मुख पर पसीना आता है। **17.** पुरी का जगन्नाथ मंदिर : मुख्य मंदिर में बलराम, कृष्ण एवं सुभद्रा की मूर्तियाँ हैं। लक्ष्मी मंदिर कुछ दूरी पर है। गुरु नानक देव ने भी इस मंदिर की मूर्तियों का दर्शन किया था। उन्होंने एक वाणी (आरती) भी बनाई थी जो श्री गुरुग्रन्थ साहिब में दर्ज है। सभी मूर्तियाँ नीम की लकड़ी से निर्मित है, प्रत्येक 12 वर्ष के अन्तराल पर इन्हें नई मूर्ति से बदल दिया जाता है, इसे 'नवकलेवर' कहते हैं। पुरानी मूर्तियों को भूमि में दबा दिया जाता है। नीम के वृक्ष का चयन पुजारी यह देख कर करते हैं कि पेड़ में विष्णु का कोई चिह्न/लक्षण हो- जैसे शंख, चक्र आदि। कृष्ण मूर्ति में पीछे एक बड़ा घर (आला) बनाया जाता है जिसे बंद करने हेतु उपाय किया जाता है। पुरानी मूर्ति के पीछे से कोई वस्तु निकाल कर कृष्ण की नवीन मूर्ति में गोपनीयता से रख दी जाती है। यह काम एक समुदाय विशेष के व्यक्ति आँखों पर पट्टी बाँध कर करते हैं। वह वस्तु क्या है, पता नहीं है। **18.** ऐलोरा, औरंगाबाद (महा.) कैलाशनाथ मंदिर : इस भव्य एवं विशाल मंदिर का निर्माण राष्टकूट शासकों ने 8वीं सदी में पूर्ण करवाया था। इसका क्षेत्र 90 मी.x52 मी. था, इसका निर्माण पहाड़ी को ऊपर से नीचे की ओर काटकर किया गया है, पहाड़ी के ऊपर की सतह से मंदिर के तल की गहराई 32.6 मी. है। अनुमान के अनुसार मंदिर को बनाने हेतु 200000 टन पत्थर काट कर निकाला गया होगा, जिसमें 20 वर्ष का समय लगा होगा। किन्तु अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि मंदिर के समीप अथवा दूरी पर मलबे (खुदाई का) ढेर नहीं दीख पड़ता है। मंदिर के नीचे कुछ गुफायें भी हैं, जिनमें प्रवेश वर्जित है। सभी बड़ी एवं छोटी मूर्तियों का निर्माण पहाड़ी के पत्थर को ही तराश कर किया गया था, अलग से किसी पत्थर से मूर्ति नहीं बनाई गई है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि इस मंदिर का निर्माण किसी अन्य ग्रह से आये हुए व्यक्तियों ने उन्नत तकनीक से किया होगा जिसमें कुराई से निकले पत्थरों का मलबा जल कर राख हो गया होगा। **19.** मंदसौर (म.प्र.), धर्मराजेश्वर मंदिर : यह मंदिर मंदसौर से 100 कि.मी. दूरी पर स्थित है, इसका निर्माण भी पहाड़ी को ऊपर से नीचे की ओर काटकर, 8वीं सदी में किया गया था। यहाँ शिव एवं विष्णु के मंदिर बने हैं। **20.** गुप्त महालक्ष्मी, नाग पहाड़, पुष्कर, अजमेर (राज.) : दुर्गम मार्ग से पंचकुंड पहुँच कर, 0.75 कि.मी. आगे जाने पर एक गुफा है। गुफा की लम्बाई 3.0 मी. है, मुँह संकरा है (केवल 0.45 मी.)। एक समय में केवल एक व्यक्ति ही अंदर जा सकता है। गुफा के भीतर महालक्ष्मी की मूर्ति है, जिसका दर्शन वर्ष में

केवल दीपावली के दिन हो सकता है, वर्ष भर मंदिर बंद रहता है। **21.** जयपुर, गढ़गणेश : 500 वर्ष प्राचीन मंदिर नाहरगढ़ के पहाड़ों पर स्थित है, इसमें गणेश मूर्ति में सूंड नहीं है। इसी प्रकार का एक प्राचीन मंदिर दक्षिण भारत में भी है। **22.** केदारनाथ क्षेत्र की चंद्र शिला : पहाड़ों पर स्थापित पाँच मुख का शिव लिंग है। **23.** मोरैना (म.प्र.) का काकरमठ : यह मंदिर 11 वीं सदी का है, शिव लिंग स्थापित है। विशेषता यह है कि मंदिर तरह तरह आकार के पत्थरों को एक के ऊपर एक रख कर बना है, उन्हें किसी प्रकार से जोड़ा नहीं गया है, फिर भी अभी तक स्थिर अवस्था में हैं। **24.** उज्जैन में 1500 कि.ग्रा. का पारे या पारद का शिव लिंग है। **25.** काकुट (म.प्र), हनुमान : इनके एक उठे हुए हाथ में शिव लिंग है। **26.** इन्दौर (म.प्र), रणजीत हनुमान : इनके एक हाथ में तलवार और दूसरे में ढाल है। **27.** वराहमूरथेश्वर, त. ना. : यह अत्यन्त प्राचीन मंदिर है। इसमें पुरुष के शूक्राणु एवं स्त्री के गर्भाशय का अंडा उकेरा हुआ है। साथ में गर्भस्थ शिशु की विभिन्न माह में होने वाली अवस्था को भी उकरा गया है। **28.** जगदीश मंदिर रोड, उदयपुर, शोभा गणेश : एक ही मार्बल शिला खण्ड से निर्मित यह गणेश मूर्ति अष्टभुजा है, कमल आसन पर विराजमान है, बड़े आकार की एवं आकर्षक है। वामांक में पत्नी विराजित हैं, जिनके एक हाथ में कमल पुष्प है। **29.** बर्द्धमान (प.बं.) के एक ही परिसर में 108 शिव मंदिर हैं। **30.** माउन्ट आबू (राज.) पर 3 कि.मी. दूरी पर अर्बुदा देवी का प्राचीन मंदिर स्थित है। मंदिर से कुछ दूरी पर, एक शिला के ऊपर उनके चरणकमल उकेरे हुए हैं। मान्यता है कि- इस स्थान पर माता सती के ओंठ गिरे थे। देवी का छठा स्वरूप ये कात्यायनी देवी की यह आदमकद मूर्ति काले पत्थर की छठी शताब्दी की है। **31.** बादामी (कर्ना.) की गुफा सं 1 में, अर्द्धनारीश्वर शिव को त्रिभंगी (शरीर का तीन स्थान पर मुड़ा होना) रूप में उकेरा हुआ था। वह छठी शताब्दी में पहाड़ों को काट कर गुफा के भीतर बनाया गया था। **32.** पटना जंक्शन रेल्वे स्टेशन के समीप 'जोड़ा हनुमान मंदिर' है, इसमें हनुमान की दो मूर्ति एक ही स्थान पर स्थापित है। ऐसा मंदिर अन्यत्र स्थान पर नहीं है। **33.** भुवनेश्वर का अनन्त वासुदेव मंदिर : इसमें ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित बलराम, कृष्ण एवं सुभद्रा की मूर्तियाँ हैं। **34.** यंत्रधारक हनुमान : यह मंदिर हम्पी (कर्ना.) में तुंगभद्रा नदी के समीप की पहाड़ी पर स्थित है। ग्रेनाइट शिला पर उकेरे यंत्र (दो त्रिभुज से निर्मित) के मध्य भाग में पद्मासन में हनुमान बैठे हुए हैं। यंत्र के बाहर की गोलाकार परिधि पर 12 वानर उकेरे हुए है। **35.** तुर्किये - गोबेकिल टेपे, ईसापूर्व 9600 वर्ष प्राचीन पुरास्थल है, यहाँ कई शिव लिंग एवं पत्थर से बनी खोपड़ी पाई गई है; जिसके पीछे के भाग पर एक सर्प उकेरा गया है, जो कि कुंडलिनि को चित्रित करता है। कुंडलिनि मूलाधार चक्र से उठ कर 7वें चक्र सहस्रार तक जाती है, यह चक्र खोपड़ी के ऊपर के भाग में स्थित है। **36.** पूरा शिव, कोलकाता-- इस मंदिर में शिव लिंग 1.8 मीटर ऊँचा है। इसे साकल से बाँधा हुआ है। आरती के दीपक को चिता की अग्नि से जलाया जाता है। **37.** ऐहोले, जि. बागलकोट, कर्नाटक का 7वीं सदी का दुर्गा मंदिर : इसमें (1) नागराज-- गोलाकार, तीन लपेटे की पूंछ, धड़ मनुष्य का, जनेऊ पहने, सिर पर मुकुट, एक हाथ में जप माला, दूसरे में कटोरा, आभूषण पहने है। (2) हरिहर-अष्टभुजा। (3) महिषासुर मर्दिनी । (4) पत्थर पर उकेरा एक यंत्र बना है। **38.** प्रयागराज, संगम के लेटे हुए हनुमान : यह मंदिर 650 वर्ष प्राचीन है, ऐसी मान्यता है कि हनुमान जी ने इस स्थल पर विश्राम किया था।

जितेन्द्र नाथ जौहरी
उदयपुर
वाटस् ऐप्प - 8003188087

●

प्रतिस्वर

'आज के लेखन' में 'तत्व' का अभाव होता जा रहा है, शब्दों के मायाजाल से अनेक पृष्ठ आसानी से लिखे जाते हैं। लेखक लम्बी संदर्भ सूची जोड़ देते हैं, चाहे लेख के शीर्षक से उसका संबंध न भी हो। संदर्भ का उपयोग तभी करना चाहिए, जब वह चर्चित सिद्धांत/जानकारी को प्रमाणित करता हो। अनेक लेख ऐसे भी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लेखक का मूल ज्ञान नगण्य है - उदाहरण एक लेखिका ने अंग्रेजी में लिखा था -Does Gita Promote Violence लेखिका हिंदी विभाग की अध्यक्ष हैं। जिन्होंने गीता का अध्ययन किया है, वह आसानी से कह सकते हैं कि लेख का विषय सही नहीं है। वैसे भी गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में लिखकर बताया गया है कि यह योगशास्त्र है। लेखिका के पद का मान रखते हुए इसे प्रकाशित किया गया है। सभी पत्रिकाओं की एक ही अवस्था है - अंग्रेजी/हिंदी, धार्मिक/आध्यात्मिक सभी की। तुलसीदास पर लिखे लेख में जन्मस्थान त्रुटिपूर्ण पाया गया। एक लेखक ने ब्रह्म पर लिखा, किन्तु चित्र ब्रह्मा का लगा दिया, इससे पता लगता है कि उन्हें ब्रह्म एवं ब्रह्मा में अंतर पता नहीं है। एक लेखिका ने श्रीगुरुग्रन्थ साहिब के पाठ को गायन के दायरे में ला दिया, वाणी/वानी का अर्थ भी नहीं लिखा, उनकी जानकारी में यह नहीं है कि श्रीगुरुग्रंथ साहिब की 70 प्रतिशत वाणी को लिखने से पहले, सिक्ख गुरुओं ने उसे शास्त्रीय संगीत के किसी विशिष्ट 'राग' में बनाया था।

विषय वस्तु की भाषा सरल न हो, इसे भी अच्छा समझा जाता है। अधिकांश संपादकों की पसंद - लेखक यदि डा./प्रो. हैं तब प्राथमिकता का अधिकार बनता है, किसी विभाग का अध्यक्ष हो तब भी उसको स्थान दिया जाय। इसके प्रभाव से धर्म/अध्यात्म की पत्रिका भी प्रभावित हैं, उनका अपना अनुभव/ज्ञान नहीं, कुछ भी लिख देते हैं। इन्हीं कारणों से मैंने कुछ पत्रिकाएं पढ़ना बंद कर दिया।

लेख 'वैदिक संस्कृति में देवी-देवताओं की सांगीतक स्थिति' (अंक 5/2024) के संबंध में कहना है कि संगीत एवं नृत्य सभी देश, काल एवं सभ्यताओं में प्रचलित रहा, अतः इसे प्रकृत माना जा सकता है। परंतु इससे संस्कृत श्लोकों के उच्चारण में त्रुटि नहीं होती। श्लोकों के पाठ में एक लय होती है, किन्तु इसे संगीत की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

देवी-देवताओं का संगीत-नृत्य से कोई विशिष्ट संबंध नहीं प्रतीत होता है। देवी सरस्वती के हाथ में वीणा दर्शायी जाती है, इससे प्रतीत होता है कि गायन से उनका संबंध है।

संगीत एवं नृत्य दो प्रकार के कहे जा सकते हैं - 1. मनुष्यों की प्रसन्नता हेतु। 2. देव-देवी को अर्पण कर उन्हें आनंदित करने हेतु। पूर्व काल में 'देवदासी' प्रथा प्रचलित थी, वे मंदिर के बाहरी भाग में मूर्ति के समक्ष, गायन एवं नृत्य करती थीं, उस समय भक्त भी उपस्थित रहते थे। एक अन्य आयाम 'साधना' भी है, जब मन शत-प्रतिशत गायन/नृत्य में लीन हो जाता है, मन की शून्य स्थिति प्राप्त हो जाती है।

नटराज शिव का नृत्य सामान्य नहीं है, वह ब्रह्मांडीय है। पृ. 58 प्राणवायु और इच्छा शक्ति ...... स्वर नाद की सृष्टि है। यह सही नहीं है। योग साधना करने वालों को नाद सुनाई देती है। योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95) ने लिखा था 'हृदय में जब अपान वायु आवे, दस प्रकार के अनहद सुनावे.....।' 'कांसार (घंटा) का आवाज हुआ, गले में चीनी माफिक मीठा मालूम हुआ, आँख के सामने बिजली चमकने लगा - ऊँकार का ध्वनि बहुत देर तक सुना।' (मानव शरीर में 49 प्रकार की वायु संचरित रहती हैं, इनमें पाँच वायु प्रधान हैं, अपान वायु उनमें से एक है)।

शिव व्योम तत्व है, मानव शरीर के सूक्ष्म सातवें चक्र 'सहस्रार' में अवस्थित है। योग साधना से शक्ति (कुंडलिनी) प्रथम चक्र से उठकर सूक्ष्म सुषुम्ना मार्ग से ऊपर उठकर सातवें चक्र में शिव से मिलती है।

यह साधना की परम उपलब्धि है। शिवशक्ति के मिलन से संगीत नहीं उपजता है।

सत्यलोक का उल्लेख किया गया है। कबीर साहिब 'सत्यलोक' में अवस्थित हैं। चारों युगों में वह अवतरित हुए थे। श्रीरंगम के संत रामानुजाचार्य (विष्णु भक्त) ने अपनी रचना 'वैकुंठगद्यम' में लिखा था कि 14 लोक एवं 7 भुवन के ऊपर वैकुंठ लोक है, जहां महाविष्णु का धाम है, उन्होंने उस स्थान का वर्णन भी किया है। लेख अत्यधिक संदर्भ मिश्रण से सारहीन हो जाता है। पाठकों के लिए उपयोगी नहीं होता।

लेख 'श्रीगुरुग्रंथ साहिब के वाणीकार' अंक (6/2024) के संबंध में कहना है कि - वाणीकार ने क्या कहा/लिखा, अत्यंत महत्वपूर्ण है। सिक्ख गुरुओं की अधिकांश वाणी स्वतः प्रस्फुटित हुई थी। गुरुनानक देव के साथ 'मरदाना' सदैव रहता था, वह 'रबाब' (तार वाला वाद्य यंत्र) बजाता था। गुरुनानक देव कहते - 'वाणी आई है, मरदाने रबाब बजा।' यह ग्रंथ गुरुमुखी में लिखा गया था। गुरुनानक देव के परवर्ती गुरुओं ने वाणी में अपना नाम न लिखकर 'नानक' का प्रयोग किया था। संकलन में संदर्भ हेतु उनका नाम न लिखकर 'महला... (संख्या)' लिखा गया था, संख्या गुरु की संख्या के क्रम के अनुसार थी। गुरुनानक देव के लिये 1, गुरु रामदास के लिए 4, गुरु गोविन्द सिंह के लिए 10 आदि। यह विलक्षण ग्रंथ है, इसमें साधना के सभी आयाम एवं अनुभव निहित हैं, गुरु का स्थान सबसे उच्च है। यह हिंदी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण भुवन वाणी ट्रस्ट; मौसमबाग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226020 (उ.प्र.) से उपलब्द्ध है (चार भाग में)।

इस ग्रंथ में अन्य धर्म/पंथ के संतों/गुरुओं की वाणी को भी स्थान दिया गया, जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि धर्म निरपेक्ष सिक्ख गुरु उन संतों की वाणी से सहमत थे। ऐसी संतवाणी को पहले 'गुरुमुखी' में लिखा गया।

सिक्ख गुरुओं ने महाभारत एवं अन्य ग्रंथों से संबंधित कथाओं को भी अपनी वाणी में प्रस्तुत किया था, उदाहरण- 1. 'राजन कौन तुम्हारे आवै' - श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का भोजन स्वीकार नहीं किया था, 'विदुर' के यहाँ भोजन किया। 2. 'छड़ सिंहासन हर जी आये' - श्रीकृष्ण ने स्वयं सिंहासन से उतरकर अपने गरीब मित्र सुदामा का स्वागत किया था। 3. ग्राह द्वारा हाथी का पैर पकड़ना, उसका विष्णु की स्तुति करना, विष्णु का शीघ्र आकर उसको राहत देना। 4. गणिका (वेश्या) के तोते का राम राम कहने का नियम, जो गणिका के मोक्ष का हेतु बना। इस ग्रंथ में 'भाट' (प्रशंसा करने वाला समुदाय) भक्तों की वाणी को भी उचित स्थान देकर सम्मानित किया गया था। इसके प्रमुख विषय हैं 1. गुरु, 2. योग के अनुभव, 3. साधना, 4. ईश्वर/गुरु पर निर्भरता एवं 5. पूर्ण समर्पण।

विभिन्न वाणी के छोटे से अंश प्रस्तुत हैं -

संत वेणी जी ने कुंडलिनी योग के संबंध में अत्यंत विस्तार से लिखा -इडा, पिंगुला और सुखमना (सुषुम्ना) तीन (नाड़ियाँ) बसहि एक ढाई। बेणी संगम वह पिरागु (प्रयाग) मनु भजन (स्नान) करे तिर्थाई (वहीं)।... तह बाजे सबद अनाहद वाणी।.... अमृत रसि गगनंतरि भीजै (क्षरित/चूता है)।....दसम दुआरा (तिर) अगम अपारा परम पुरख (पुरुष) की घाटी। मस्तक पदमु (छठा चक्र) दुआलै मणी। माहि निरंजनु त्रिभवण घणी। पंच सबद निरमाइल बाजै। कुलके चवर संस घन गरजै।

नामदेव संतः जौ राज देहि त कवन बड़ाई। जौ भीख मंगावहि त किया घर जाई। - एक अनेक बियापक (व्यापक) पूरक (पूर्ण) जत देखउ तत सोई। - कोई कउ कीजै धियानु अपना (जप)। जब ते (तक) सुधु (शुद्ध) नाही मन अपना।

संत कबीर साहेब : हज हमारी गोमती (नदी) तीर (तट)। जहा बसहि पीतांबर पीर (श्रीकृष्ण)। सतरि (सत्तर) काबा घट (शरीर) ही भीतर जे करि जाने कोई। - गुरु प्रसादि सहजि तरे कबीरा। - हिन्दु तुरक (मुसलमान) दुहूं महि एकै (एक ही ईश्वर) कहै कबीर पुकारी। - हरि की कथा आनहत (अनहद) बानी। - कहि कबीर हीरा अस (ऐसा) देखियो जग मह रमा समाई। गुपता (गुप्त) हीरा प्रगट भइओ (हुआ) जब गुरु गय (मार्ग) दीआ दिखी। जोलोह (जुलाहे) घरू चीन्हा घट (शरीर) ही रामु पछाना।

गुरुनानक देव : अनहदो अनहदु वाजै रूण झुण कोर राम। - नानक गुर समानि तीरथ नहीं कोई। - गुरु सागरो रतनागूर तितु (वहां) रतन घणरे राम। - नानक गुर समानि तीरथ नहीं कोई साचे गुर गोपाला (ईश्वर)।

गुरु अमर दास : गुरु अनन्त गुणों का समुद्र है।

पूर्ण गुरु की शरणागत हुए बिना परमात्मा की भक्ति नहीं हो सकती।

गुरु राम दास : जिन मसतकि धुरि (भाग्य) हरी ईश्वर लिखिया तिना सतगुरु मिलिया राम राज।

गुरु अर्जुन देव : उस गुरु पर बलिहारी हो जिसके द्वारा अन्तर्यामी सर्वव्यापक परमात्मा मिल सकता है। - तुम (प्रभु) मुझे जिधर भेजते हो मैं उस रो ही जाता हूँ जो तुम मुझे देते हो, दुख या सुख, मैं प्रसन्नता पूर्वक सुख मानता हूँ।

अन्य : नजर (दया) करे ता (तब) सदगुरु मेतै। - गुरु देखे बिन मुझे नींद ना आवे। - मौ को तू न बिसार रामईआ।

लेख साहित्य, धर्म और विज्ञान (अंक 6/2024) के संबंध में कहना है कि साहित्य को महामंडित करते हुए धर्म को महत्वपूर्ण नहीं बताया गया है। साहित्य की तुलना धर्म से करना उचित नहीं है। धर्म शाश्वत है। अध्यात्म तक पहुँचने हेतु धर्म सीढ़ी का कार्य करता है। विभिन्न समुदाय (इस्लाम, सिक्ख, जैन, हिन्दु, ईसाई...) के अनुसार धर्म का अर्थ/मूल्य भिन्न हो सकता है, किंतु अध्यात्म में समानता दिखेगी, क्योंकि अंतिम पड़ाव एक वही है, वहां भिन्नता नहीं है। जिन्होंने धर्म को नहीं समझा है, ऐसे व्यक्ति झगड़ते रहते हैं, अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए।

1. गीता उपदेश, श्लोक 7/4अ. में कहा गया है - यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्यवति भारत।..... जब जब धर्म का ह्रास होता है, मैं प्रकट होकर इसकी पुनः स्थापना करता हूँ (ईसा पूर्व 3100 वर्ष)।

क्रिया योग गुरु श्री श्यामचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95) ने लिखा था - कबीर साहेब सभी युग में वर्तमान थे - सतयुग में सत्य सुकृत नाम से, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय, कलियुग में कबीर। कबीर साहेब ने प्रथम शिष्य धर्मदास को जो उपदेश दिया था, वह 'गुरु गीता' नाम से प्रचलित है। इसे पढ़ने से पता चलता है कि वह महान योगी थे, उन्होंने कुंडलिनि योग से संबंध में विस्तार से वर्णन किया था।

2. 5000 वर्ष प्राचीन हड़प्पा सभ्यता की 'पशुपति' (शिव के तीन मुख वाली) एवं अन्य महुर देखने से पता चलता है कि वह लोग शिव एवं देवी की आराधना एवं योग करते थे।

3. सऊदी अरेबिया में कुछ समय पहले ही 6000 वर्ष प्राचीन हिन्दु मंदिर एवं हवन वेदी के अवशेष प्राप्त हुए थे।

4. हरिवंश पुराण के अनुसार पुष्कर घाटी की 'कानबाय विष्णु' मूर्ति 4790 वर्ष प्राचीन है, वहीं कार्बन डेटिन्ग के अनुसार यह 4100 वर्ष प्राचीन है। कथा के अनुसार श्रीकृष्ण इस स्थान पर आये थे।

5. माँ मुण्डेश्वरी मंदिर, कैमूर हिल्स, बिहार, एएसआई के अनुसार यह मंदिर सन 108 का है।

6. दक्षिण कन्नड के ग्राम सुब्रामन्या का 'कुक्के सुब्रामन्या' मंदिर 5000 वर्ष प्राचीन होने की मान्यता है। उपरोक्त कालखंड में साहित्य वर्तमान नहीं प्रतीत होता है।

2. दर्शन विज्ञान नहीं है। स्वतः उदित अन्तर्ज्ञान (ज्ञान चक्षु/तृतीय चक्षु से) ही महत्वपूर्ण है। गीता 'ब्रह्म विद्या योग शास्त्र' है, यह तथ्य प्रत्येक अध्याय के अंत में वर्णित है। (किंतु अनेक टीकाकार इससे अनभिज्ञ हैं)। इसी कारण से गीता के भाष्यों की संख्या 1500 से अधिक है। इसका सही अर्थ 'आत्मदर्शन' प्राप्त योगी गुरु ही उजागर कर सकता है। पृ. 14 पर लिखा गया है- 'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायम' एवं इसे गीता का अंश बताया गया है। किंतु यह महाभारत वन पर्व में वर्णित श्लोक है - 'धर्मस्य तत्वं निहितम गुहायाम, गुहायां निहितं ब्रह्म शाश्वतं।' इसका यौगिक अर्थ यह है - यह गुहा मानव शरीर में कूटस्थ के रूप में स्थित है, जिसे 'गगन गुहा' भी कहते हैं। 'कूटस्थ' के मध्य जो बिन्दुवत है, उसके भीतर यदि मन का प्रवेश हो जाये, तब चिन्मय चेतन अणु प्रत्यक्ष होता है, अथवा एक चिन्मय प्रत्यक्ष तत्व की अनुभूति होती है और तब धर्म का प्रकृत/वास्तविक तत्व या गूढ़ रहस्य उद्भासित होता है। यह एक मात्र प्राणकर्म के द्वारा ही संभव है और सभी योगी इस कूटस्थ का दर्शन करते हैं (महान क्रिया योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95)।

गीता श्लोक 12/3 में शब्द कूटस्थमचलं ध्रुवम देखने में आता है। अर्थ - समबुद्धि वाले सभी व्यक्ति इन्द्रियों को सम्यक रूप से संयत करके अनिर्वचनीय रूप आदि से रहित सर्वव्यापी, अचिन्त्य, स्थिर, नित्य एवं अविनाशी कूटस्थ की उपासना करते हैं।

कठोपनिषद (यम-नचिकेता संवाद) के श्लोक 4/12,13 में अंगुष्ठप्रमाण पुरुष में आत्मा का वास वर्जित है। उच्चकोटि के योगी का तृतीय नेत्र जाग्रत होने पर उसमें यह शक्ति प्रकट होती है-दूरी पर स्थित स्थान/व्यक्ति के बारे में जान सकता है - त्रिकालज्ञ ज्ञान सम्पन्न होता है। - सभी प्रश्नों का उत्तर त्वरित प्राप्त होता है।

विज्ञान के नाम पर जो जानकारी वर्तमान के वैज्ञानिकों ने अनेक यंत्रों की सहायता से प्राप्त की है, वही भारतीय संतों/योगियों ने बिना किसी यंत्र के बहुत पूर्व में ही प्राप्त कर ली थी। उसे लिपिबद्ध भी किया गया था।

जितेन्द्र नाथ जौहरी
ई-234, सै. 14, हिरणमगरी
मो. 8003188087
ई-मेल -jnjohari@yahoo.in

वैचारिकी भाग 41 का अंक 2 अप्रैल 2025 प्राप्त हुआ। पृष्ठ 6-8 पर संपादकीय के अंतर्गत धर्मनिरपेक्षता पर लेख है।

लेख से बोध होता है कि भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द प्रयुक्त है। परंतु संविधान की प्रस्तावना में सेक्यूलर शब्द 1975 में आपातकाल के बाद युक्त किया गया था। संविधान सभा में सेक्यूलर शब्द के हिंदी पर्यायवाची के लिए गहन चर्चा हुई एवं शब्द पंथनिरपेक्ष स्वीकृत किया गया। 1975 के संशोधन के पश्चात प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द ही है। सेक्यूलर के लिए कभी भी 'धर्मनिरपेक्ष' का उल्लेख नहीं है। सर्वत्र यह पंथनिरपेक्ष शब्द सर्वदा प्रयुक्त होता है।

अंक के अन्य लेख कांगड़ा चित्र शैली, प्रसाद का नाट्य सृजन, भारतीय बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक एवं पठनीय लेख हैं; तदर्थ साधुवाद।

अरुण चूड़ीवाल

4, नेशनल लाइब्रेरी एवेन्यू, कोलकाता-700 027

फोन : 2456-7180/7181

ई-मेल - arun@gitapath.com

महोदय! आपने सम्पादकीय में लिखे गये 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द की जगह 'पंथनिरपेक्ष' शब्द लिखने पर जोर देते हुए लिखा है कि, 'संविधान सभा में सेक्यूलर शब्द के हिंदी पर्यायवाची के लिए गहन चर्चा हुई एवं शब्द पंथनिरपेक्ष स्वीकृत किया गया। 1975 के संशोधन के पश्चात प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द ही है। सेक्यूलर के लिए कभी भी 'धर्मनिरपेक्ष' का उल्लेख नहीं है।' मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि संविधान सभा 1950 में विसर्जित कर दी गई थी और संविधान सभा में भारत के संविधान में कहीं भी सोशयल्जिम और सेक्यूलर शब्द लिखे ही नहीं तो फिर उन पर गहन विचार-विमर्श पर प्रश्न ही कहां है? आपने स्वयं लिखा है कि 1975 में भारत की संविधान की प्रस्तावना में सेक्यूलर शब्द जोड़ा गया है, तो उस समय संविधान सभा कहां थी?

भारत का संविधान मूलतः अंग्रेजी में है। अतः उसमें प्रयुक्त किसी शब्द का हिन्दी में अनुवाद करने की स्वतंत्रता पाठक को मिल जाती है। जैसे- आपने अपने पत्र में Preamble का अनुवाद प्रस्तावना किया है, जबकि डॉ. रघुवीर सिंह द्वारा किये गये भारत का संविधान के हिन्दी अनुवाद में इसका अनुवाद 'उद्देशिका' है।

यह सही है कि डॉ. रघुवीर सिंह द्वारा किये गये हिन्दी अनुवाद में Secular का अनुवाद पंथनिरपेक्ष किया गया है। डॉ. रघुवीर सिंह ने लगभग 40 हजार अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी अनुवाद किया है, जिनमें से अधिकांश अपनी कृत्रिमता के कारण अप्रचलित हैं। जैसे रेल या ट्रेन का अनुवाद- लोहपथगामिनी है और इसी तरह सेकुलर का पंथनिरपेक्ष अनुवाद भी अप्रचलित है। वस्तुतः ऐसे शब्दानुवादों में अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष है। पंथनिरपेक्ष अनुवाद में अव्याप्ति दोष है इससे हिन्दू, इस्लाम, इसाई इत्यादि की धर्मों के रूप में पहचान को 'पंथ' शब्द अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा है। इन धर्मों में कई पंथ और उनमें भी सम्प्रदाय हैं, जिससे पंथनिरपेक्ष शब्द अव्यवहारिक हो गया। अपवाद स्वरूप कुछ लोग पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग करते हैं लेकिन समान्यतः अधिकांश-अधिकांश में सेकुलर का अनुवाद धर्मनिरपेक्ष ही व्यवहार में है।

वैचारिकी का उक्त संपादकीय 2024 में स्वतंत्रता दिवस पर माननीय प्रधानमंत्री जी के अभिभाषण के संदर्भ में है। आपने इस भाषण को सुना होगा तो आपको याद होगा कि इसमें प्रधानमंत्री जी ने स्वतंत्रता दिवस के मौके पर लाल किले की प्राचीर से सेकुलर सिविल कोड की जरूरत बताई। पीएम मोदी ने कहा- 'वे कानून जो देश को धर्म के नाम पर बांटते हैं, उन्हें दूर किया जाना चाहिए। देश में एक सेकुलर सिविल कोड की जरूरत है और गलत कानूनों के लिए आधुनिक समाज में कोई जगह नहीं है। मौजूदा नागरिक संहिता एक कम्युनल नागरिक संहिता है। अब हमें एक धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता की आवश्यकता है। एक नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों को पूरा करना भारत के 140 करोड़ लोगों का कर्तव्य है और मैं इस पर बहस चाहता हूं, जो कानून सांप्रदायिक और भेदभावपूर्ण हैं, उनके लिए कोई स्थान नहीं है, हमें एक धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता की आवश्यकता है।' उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री ने एक बार भी पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग नहीं किया।

इसी अभिभाषण के संदर्भ से ही मैंने वैचारिकी में उक्त सम्पादकीय लिखा था। इसी तरह प्रोफेसर गौरव वल्लभ का 'धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता' शीर्षक से एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। अभी प्रो. गौरव प्रधानमंत्री कार्यालय में सलाहकार हैं। सेकुलर की जगह धर्मनिरपेक्ष शब्द के व्यवहार से सम्बन्धित हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो निश्चित रूप से आपके भी संज्ञान में हैं। पुनः धन्यवाद।

- संपादक

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। **संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।**

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

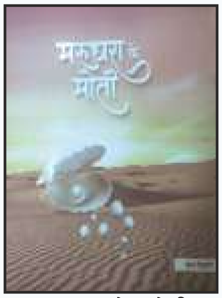

मरुधरा के मोती
पुष्पा गोस्वामी
मूल्य 2250/- पृ.सं. 140

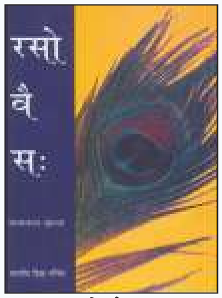

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

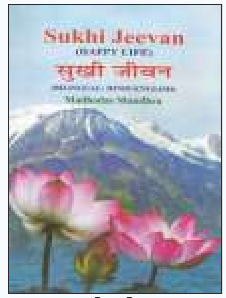

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

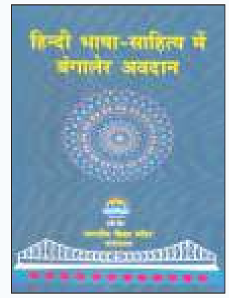

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

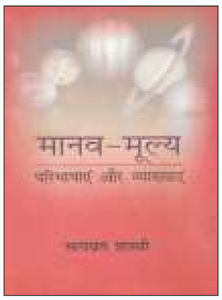

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

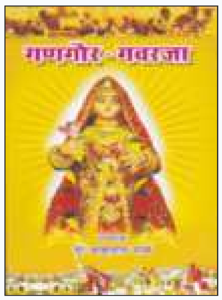

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

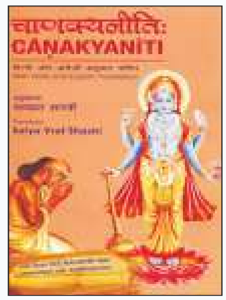

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

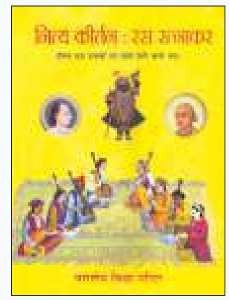

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

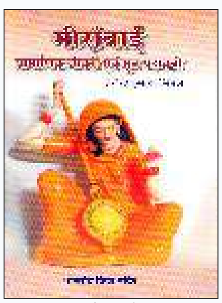

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

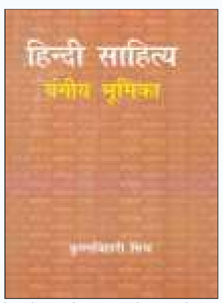

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

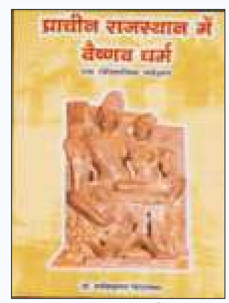

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

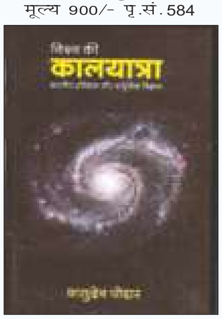

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

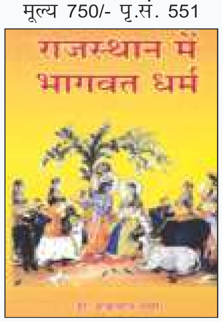

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

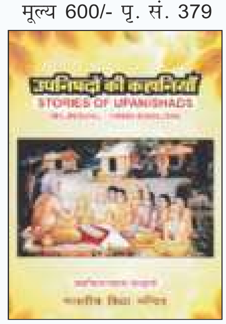

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

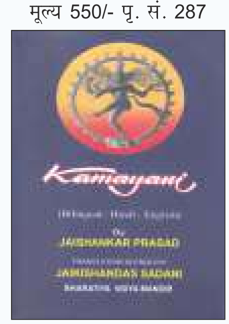

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/- July-August 2025 R.N.I. No. 22298/71

From	***TO***
BHARATIYA VIDYA MANDIR 12/1, Nellie Sengupta Sarani Kolkata - 700087 *(W.B.)*	

तुलसी जयंती समारोह के अवसर पर सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय में बायें से पुस्तकालय अध्यक्ष श्री भरत जालान, मुख्य वक्ता प्रो. हरिशंकर मिश्र, डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा, डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी।

भारतीय विद्या मंदिर के अध्यक्ष डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा का स्वागत करते हुए प्रो. गोपालकृष्ण ठाकुर अधिष्ठाता, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

भारत सरकार के विधि मंत्री श्री अर्जुनराम मेघवालजी को भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें भेंट करते हुए संस्थान के न्यासी श्री राजीव मूंधड़ा एवं सचिव शंकरलाल सोमानी।

भक्ति वेदांत इंस्टीच्यूट के समर स्कूल कार्यक्रम के अवसर पर विश्व बांग्ला कनवेंशनल सेंटर में प्रधान अतिथि डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा एवं संस्थान के सभापति श्री के. वासुदेव राव एवं प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. पंकज जोशी।

स्व. माधोदासजी मूंधड़ा द्वारा निर्मित सूरज देवी मूंधड़ा राजकीय जिला अस्पताल (बीकानेर) में 1 करोड़ रुपये की लागत से स्वागत कक्ष, प्रतिक्षालय और मुख्य द्वार बनाने पर सहमति प्रकट करते हुए श्री अमिताभदास मूंधड़ा एवं श्री शशिमोहन मूंधड़ा, साथ में अस्पताल के निदेशक डॉ. सुनील हर्ष।